TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178321
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H923.2/M43G Accession No. G.H. 1540

Author माथुर, प्रेमनारायण ।

Title गाँधी ग्रंथ । 1949 ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

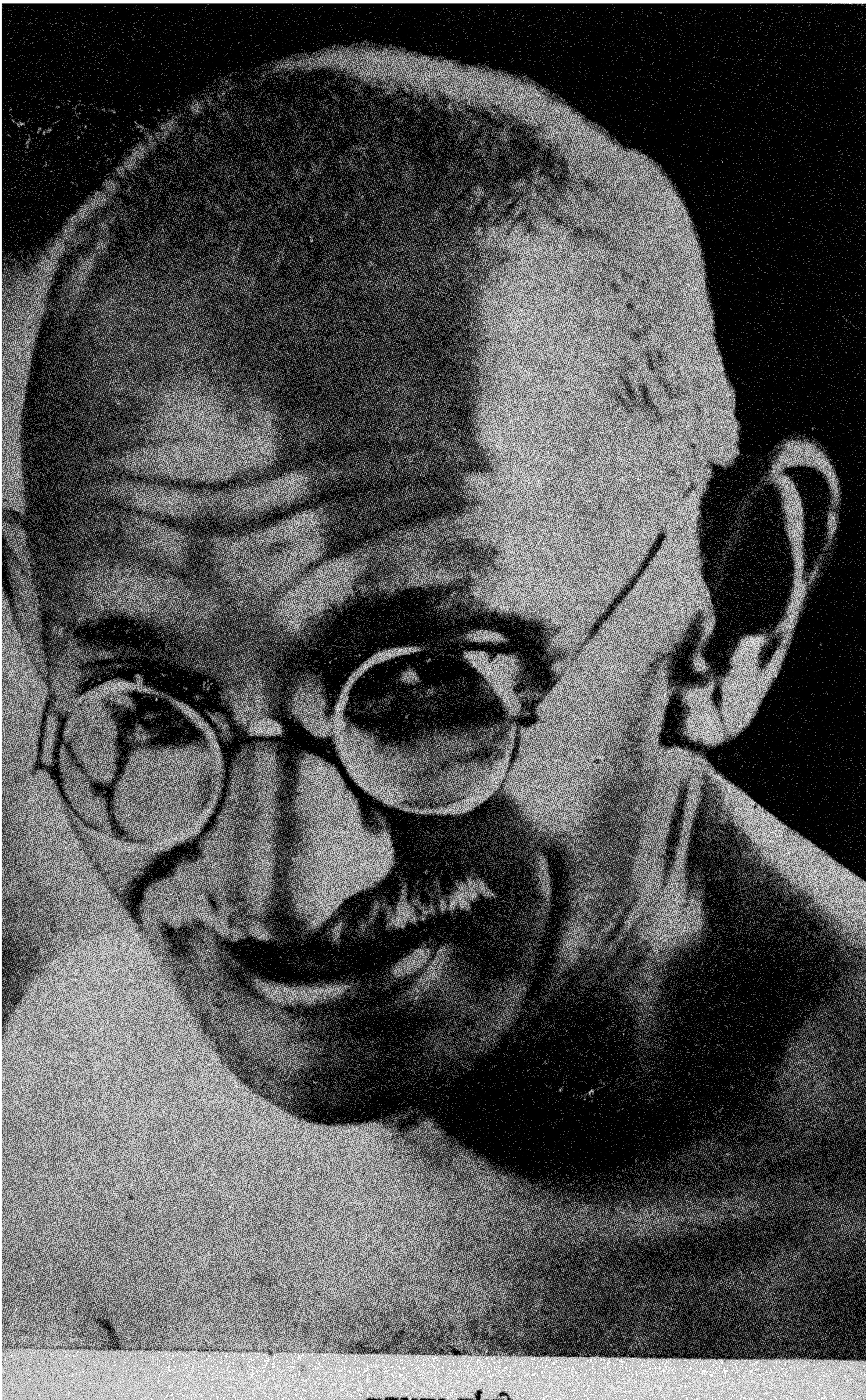

महात्मा गांधी

गाँधी ग्रंथ

(समाज-शास्त्र-परिषद् वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली
जयपुर के तत्त्वाधान में प्रकाशित)

संपादक
श्री प्रेमनारायण माथुर

प्रकाशक
रामनारायण लाल
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
इलाहाबाद

२ अक्टूबर १९४९

मुद्रक—
मुंशी रमजान अली शाह
नेशनल प्रेस,
प्रयाग

दो शब्द

वनस्थली विद्यापीठ ने एक विशेष प्रेरणा और भावना को लेकर २ अक्टूबर, १९४५ को समाजशास्त्र परिषद् की स्थापना की। समय-समय पर समाज-शास्त्रीय विषयों पर चर्चा करना, उनका अध्ययन करना तथा उनके सम्बन्ध में प्रकाशन करना इसका कार्यक्रम निर्धारित किया गया।

यह पुस्तक परिषद् के तत्त्वावधान में सबसे पहला प्रकाशन का कार्य है। पहले इस पुस्तक को पूज्य महात्मा गाँधी के अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित करने का विचार था। पर पूर्व इसके कि वनस्थली विद्यापीठ समाज-शास्त्र-परिषद् अपने इस निश्चय को कार्यान्वित करती, पूज्य गाँधी जी अपने शरीर रूप में हमारे बीच से उठ गये। फिर भी जो आदर्श और व्यवहार उन्होंने हमारे सामने अपने जीवन द्वारा प्रस्तुत किया वह आज भी हमारे मार्ग को प्रकाशवान करने वाला है, और बराबर रहेगा। अस्तु, हमने इस पुस्तक को 'गाँधी ग्रंथ' के नाम से प्रकाशित करने का विचार किया है।

वनस्थली समाज-शास्त्र-परिषद् का यह प्रथम प्रकाशन आगे ऐसे अन्य प्रकाशन के लिए हमें उत्साहित करेगा और हमें विश्वास है कि हम समाज-शास्त्रीय विषयों पर शीघ्र अन्य प्रकाशन कार्य को पूरा करने में सफल होंगे।

अन्त में मैं उन सब महानुभावों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने अपना योग देकर इस कार्य को सफल बनाने में सहायता दी है।

राजेश्वरी
मंत्राणी
समाज-शास्त्र-परिषद्
वनस्थली विद्यापीठ

वनस्थली
१२ सितम्बर, ४६

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
महात्मा गाँधी के प्रति	[श्री राधाकृष्णन्]	१
महात्मा गाँधी और उनका इतिहास में स्थान	[श्री प्रेमनारायण माथुर]	५
गाँधी-प्रयत्न	[श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला]	५५
गाँधी : विधायक और स्रष्टा	[श्री शान्तिप्रसाद वर्मा]	५६
गाँधी जी तथा हरिजन	[श्री अ० वि० ठक्कर]	७३
गाँधी और हिन्दी वाङ्मय	[श्री सुधीन्द्र]	७६
क्या गाँधी युग खत्म हुआ ?	[श्री मन्नारायण अग्रवाल]	१३७
गाँधी और प्लेटो	[सुश्री राजेश्वरी]	१४१
बिन्दु से सिन्धु	[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]	१५७
परिशिष्ट :		
वनस्थली विद्यापीठ समाज-शास्त्र-परिषद्		१६३
उद्घाटन भाषण (अंग्रेजी में)	[श्री प्रेमनारायण माथुर]	१६७

—: ❀ :—

महात्मा गाँधी के प्रति

श्री राधाकृष्णन्

महात्मा गाँधी के प्रति

श्री राधाकृष्णन्

यदि गाँधी अपने आपको समस्त द्वेष और घृणा से मुक्त कर सके हैं, प्रेम क़ी उस ज्योति को प्रज्वलित कर सके हैं जो कि समस्त मलीनताओं को जलाने वाली है, यदि वे किसी बुराई से नहीं डरते हैं चाहे फिर वह मृत्यु की साया की घाटी में काम क्यों न करते हों, यदि वह हमारे लिए आशा की शाश्वत वाणी का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो इसका कारण यह है कि वे भारतवर्ष की विरासत में विश्वास करते हैं, आत्मा के आन्तरिक जीवन की शक्ति में। जब भौतिक और आध्यात्मिक समस्याओं का उनके सामने जमघट हो जाता है, जब परस्पर विरोधी परिस्थितियाँ उनको विचलित करती हैं, जब कष्टों का उन पर प्रहार होता है, वह स्वेच्छा से आत्मा की विश्राम शाला में चले जाते हैं, आत्मा की गुप्त बारहदरी में, शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त करने के लिए। ऐसे व्यक्ति जिनमें आध्यात्मिक संतुलन भरा पड़ा है और जो फिर भी अपने पर पीड़ित मानवता के बोझ को लेते हैं, संसार में कभी-कभी ही जन्म लेते हैं।

महात्मा गाँधी और उनका इतिहास में स्थान

श्री प्रेमनारायण माथुर

महात्मा गाँधी और उनका इतिहास में स्थान

श्री प्रेमनारायण माथुर

आज का विश्व एक अत्यन्त रुग्णावस्था में है। मानव के अमानवीय तत्त्वों ने उसके मानवीय तत्त्वों पर विजय प्राप्त कर ली हो, और जिस मानव-सभ्यता का निर्माण हमने असंख्य युगों के अपने प्रयत्नों से किया है उसी का विनाश आज हमारा एक मात्र लक्ष्य हो गया हो, कुछ इस प्रकार की हमारी अवस्था है। मनुष्य ने अपने बुद्धिबल से विज्ञान के क्षेत्र में जो अनेकों सफलताएँ प्राप्त की हैं, और जिनको हम अपने अज्ञान में 'प्रकृति पर विजय' का नाम देते हैं, उनका उपयोग उसने अभी तक निर्माण के लिए उतना नहीं किया है जितना एक दूसरे के विनाश के लिए। हमारी सभ्यता आज कुंठित है; हमारी मानवता उद्विग्न और उत्पीड़ित है; और हमारा संपूर्ण सामाजिक संगठन विशृंखलित। हमारे मूल्यांकन की विधि अत्यन्त दूषित हो चुकी है, और हमारा नैतिक तथा सामाजिक धरातल बहुत गिर चुका है। आज एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का, एक जाति दूसरी जाति का, एक वर्ग दूसरे वर्ग का, और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का यथाशक्ति शोषण करना चाहते हैं। जब मानव-समाज इस शोचनीय अवस्था में पहुँच चुका हो, तो उसके सामने एक ही प्रश्न प्रमुख हो सकता है और वह है इस असंतुलन की अवस्था में फिर से संतुलन लाने का, अस्वस्थकर स्थिति को स्वस्थकर बनाने का, तथा हिंसा और शोषण जैसी विनाशकारी प्रवृत्तियों का अन्त करके उनके स्थान पर प्रेम और भ्रातृ भाव की निर्माणकारी प्रवृत्तियों की स्थापना करने का। दुनियाँ में इस प्रकार

के कल्याणकारी प्रयत्न आज चल रहे हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। मानव जाति में एक नई चेतना का जन्म हो चुका है और यह नव-चेतना तथा जागृति विश्व-कल्याण के लिए प्रयत्नशील है। विश्व की इस नव जागृति के इतिहास में महात्मा गाँधी का अपना एक विशिष्ट और अपूर्व स्थान है। उनके जीवन और सिद्धान्तों ने न केवल एक महान् पर सुप्त राष्ट्र को जागृत किया, उसके नैराश्य का अन्त करके उसमें आशा और उत्साह का संचार किया, और उसे एक शक्तिहीन राष्ट्र से सशक्त राष्ट्र बनाया, बल्कि उन्होंने समस्त मनुष्य-जाति के सामने एक नए मार्ग का उदाहरण उपस्थित किया और समाज-शास्त्र के विद्वानों के सामने एक अपूर्व प्रयोग का रास्ता खोला। महात्मा गाँधी का, अस्तु, मानव इतिहास के विकास में एक महत्व पूर्ण स्थान है और वह रहने वाला है। निम्न पंक्तियों में हम इसी संबंध में कुछ प्रकाश डालेंगे।

एक संपूर्ण जीवन दर्शन

महात्मा गाँधी के जीवन और सिद्धान्तों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके जीवन दर्शन को भली प्रकार समझा जाए। मनुष्य एक महान् विश्व का बहुत छोटा सा अंग मात्र है। इस महान् विश्व में वह जन्म लेता है, इसमें जीवन यापन करता है, और अन्त में कम से कम अपनी शरीरावस्था से तो उसकी मुक्ति हो जाती है। अपने जीवन-काल में वह इस संसार के समस्त व्यवहार और व्यापार को देखता है। विश्व में दिखाई देने वाली विभिन्नता का और उसकी अनेक रूपता का उसे अनुभव होता है। समस्त प्राणियों में मनुष्य की एक विशिष्टता है कि उसके पास बुद्धि है, और इसलिए विचार करना उसका स्वभाव है। अस्तु, उसने सदा से ही जिस सृष्टि का वह अंग मात्र है उसके बारे में विचार किया है। जीवन और उसका आदर्श क्या है, यह प्रश्न बराबर उसके सामने रहा है ? आज भी है, और भविष्य में भी अवश्य ही रहने

वाला है। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर देने के प्रयत्नों के फलस्वरूप भिन्न भिन्न दार्शनिकों के भिन्न-भिन्न दर्शन शास्त्रों का जन्म अब तक हुआ है। यदि हम इस प्रश्न पर गहराई से विचार करें तो जीवन और उसके लक्ष्य के सम्बन्ध में हमें दो स्पष्ट दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य-जीवन का इतिहास मनुष्य द्वारा किए गए उन प्रयत्नों का लेखा मात्र है जो वह अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए करता आया है। सभ्यता के आरंभ में मनुष्य का जीवन अत्यन्त सादा और सरल था तथा उसकी आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित थीं। जैसे जैसे सभ्यता का विकास हुआ मनुष्य की आवश्यकताओं में अभिवृद्धि हुई और उसका प्रयत्न बराबर इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने का रहा। यही उसने अपने जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य समझा। सामान्यतया एक सांसारिक मनुष्य अपने जीवन के सामने यही लक्ष्य रख कर चलता है। आधुनिक पूँजीवादी उद्योगवाद के जन्म और उसके उत्तरोत्तर विकास और प्रसार के साथ-साथ जीवन सम्बन्धी इस दृष्टिकोण को भी अधिकाधिक प्रोत्साहन मिला। इसका ऐतिहासिक कारण था। पूंजीवादी उद्योगवाद का जन्म मनुष्य की वैज्ञानिक खोजों से हुआ। उत्पत्ति के नए नए साधनों का आविष्कार हुआ। पूँजीवादी उद्योगवाद इन उपायों का पूरा-पूरा लाभ उठा सके, इसके लिए मनुष्य मात्र में जीवन के प्रति यह दृष्टि उत्पन्न होना आवश्यक था कि जीवन का लक्ष्य आवश्यकताओं की बेरोक वृद्धि करना मात्र है। आधुनिक अर्थशास्त्र और उसके पंडितों ने इस दृष्टिकोण का खूब प्रचार किया और आज भी वह प्रचार जारी है। यदि उत्पत्ति साधन (फोर्सेज ऑव प्रोडक्शन) विकास की इस अवस्था में न होते, यदि वे मालिक और मजदूर के उत्पत्ति-संबंधों (रिलेशन्स ऑव प्रोडक्शन) को जन्म न देते और इनके परिणाम स्वरूप मनुष्य की उत्पादन शक्ति का इतना विकास न होता तो कभी भी जीवन के इस दृष्टिकोण को इतना महत्व न मिलता। जीवन सम्बन्धी

इस दृष्टिकोण को भौतिक अथवा बहिर्मुखी दृष्टिकोण का नाम दिया जाता है। मार्क्स और उसके वैज्ञानिक समाजवाद ने जो जीवन का दृष्टिकोण हमारे सामने पेश किया और जिसके अनुसार हमारा ध्येय एक ऐसी समाज-व्यवस्था को जन्म देना है जिसमें किसी प्रकार के शोषण के लिए स्थान न हो और समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की अधिकतम सुविधाएँ समान रूप से उपलब्ध हों, वह इसी भौतिक दृष्टिकोण का एक परिष्कृत रूप कहा जा सकता है।

ऊपर हमने जीवन संबंधी भौतिक अथवा बहिर्मुखी दृष्टि का उल्लेख किया है। जीवन संबंधी इससे एक भिन्न दृष्टि भी रही है। भारतीय दर्शन और विचार में इस दूसरी दृष्टि की प्रधानता मिलती है। इसका यह अर्थ नहीं कि पाश्चात्य अथवा अन्य पूर्वी देशों के दर्शन में इस दूसरी दृष्टि का अभाव है। पर हमारे देश के दर्शन शास्त्र में यह दृष्टि एक अटूट श्रृंखला की तरह आज तक चली आई है और इसका बहुत विकास हुआ है। इस दूसरी दृष्टि को हम जीवन संबंधी आध्यात्मिक अथवा अन्तर्मुखी दृष्टि का नाम दे सकते हैं। इस विचार धारा के अनुसार जीवन की वास्तविकता इस पदार्थ अथवा दृश्य जगत् में नहीं है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहना मात्र नहीं है। वह लक्ष्य तो इस दृश्य-जगत से सीमित न होकर उससे परे है। वह मनुष्य के इस वास्तविक ज्ञान में है कि इस वाह्य जगत की वास्तविकता अन्तिम वास्तविकता नहीं है। जीवन का वह अन्तिम सत्य नहीं माना जा सकता। जीवन का अन्तिम लक्ष्य अपने आपको दृश्य-जगत के भौतिक बन्धनों, उसकी भौतिक आकाँक्षाओं और इच्छाओं से मुक्त करना और मोक्ष की प्राप्ति करना है। दूसरे शब्दों में मनुष्य जीवन का अन्तिम ध्येय शरीर की इच्छाओं की तृप्ति नहीं वरन उन इच्छाओं से अपने आपको ऊपर उठाकर आत्मा की उन्नति अथवा आध्यात्मिक उन्नति करना है।

जीवन सम्बंधी उक्त दृष्टिकोण को भिन्न-भिन्न दार्शनिकों तथा दर्शन

शास्त्रों ने अपने-अपने ढंग से प्रकट किया है। प्लेटो ने आत्मा की उन्नति (टेन्डिंग ऑव दी सोल) का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। एरिस्टोटल का पदार्थ (मेटर) की अपने अनुरूप स्वरूप (फार्म) की ओर आगे बढ़ने और उसको प्राप्त करने की प्रवृत्ति से यही अर्थ है। इसी को उसने दूसरे शब्दों में संसार की ईश्वर (गॉड) के लिए इच्छा भी कहा है। इसी प्रकार पाश्चात्य आदर्शवादी दार्शनिक बर्कले का यह विचार कि पदार्थ (मेटर) एक भ्रम (इल्यूजन) मात्र है इसी बात की पुष्टि करता है कि भौतिक जगत् अन्तिम वास्तविकता (अल्टीमेट रियेल्टी) नहीं है। १६वीं १७वीं शताब्दी के बुद्धिवादी दार्शनिक (रेशनलिस्ट्स) जैसे डेसकार्टस, स्पिनोजा आदि, भी संसार को अन्ततः आध्यात्मिक ही मानते थे। केन्ट ने भी अपने दर्शन शास्त्र में मनुष्य की भौतिक इच्छा (डिजायर) और उसकी स्वतंत्र-नैतिक-इच्छा (फ्री-मोरल-विल) में जो भेद किया, और हेगल ने जो सृष्टि की वास्तविकता अपने निरपेक्ष (एब्सोल्यूट) में देखी, तो इन विचारों के पीछे भी जीवन के बारे में आध्यात्मिक दृष्टिकोण का ही आधार था।

जीवन सम्बन्धी जो अभौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि हमको उपरोक्त पाश्चात्य दर्शन शास्त्रों और दार्शनिकों के विचारों में मिलती है उसका और भी अधिक स्पष्ट और सुन्दर व्यक्तीकरण हमको भारतीय दर्शन और विचार-धारा में दिखाई पड़ेगा। विभिन्न भारतीय दर्शन शास्त्रों में जहाँ अनेकों बातों में हम मत भेद पाएँगे वहाँ दो बातों में हमको समानता मिलेगी। एक तो यह कि प्रत्येक भारतीय दर्शन एक न एक रूप में मोक्ष के आदर्श को स्वीकार करता है। मोक्ष का यह आदर्श इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है और यही कारण है कि इसे जीवन मुक्ति का नाम दिया गया है। न्याय-वैशेषिक और विशिष्टाद्वैत दर्शन में यद्यपि जीवनमुक्ति के आदर्श को बाकायदा स्वीकार नहीं किया गया है पर उनमें भी स्पष्ट रूप से मनुष्य की एक ऐसी स्थिति में पहुँच सकने की संभावना को स्वीकार किया गया है जो आत्म-ज्ञान की स्थिति है क्योंकि इस स्थिति में पहुँचकर मनुष्य का संसार के प्रति दृष्टि-

कोण सर्वथा बदल जाता है और उसके समस्त जीवन-क्रम में एक नई अनुभूति का प्रवेश हो जाता है। इस विचार की पुष्टि कुछ उदाहरणों से की जा सकती है। उपनिषद् का एक विख्यात वाक्य है "अहम् ब्रह्मास्मि" "मैं ब्रह्म हूँ"। समस्त सृष्टि का आधार यह निरपेक्ष ब्रह्म ही है जिसको दोनों रूपों में स्वीकार किया गया है—एक रूप उसका यह है कि वह समस्त सृष्टि में व्याप्त है (इमानेन्ट) क्योंकि ब्रह्म स्वयं ही अपने आपको इस दृश्य जगत् के रूप में व्यक्त करता है। यही 'ब्रह्म परिणामवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरा रूप ब्रह्म का यह है कि वह समस्त दृश्य जगत् का आधार है और बिना स्वयं में परिवर्तन किए हुए वह सृष्टि के रूप में प्रकट होता है इसी को ब्रह्म विवर्तवाद कहते हैं। मनुष्य जीवन का लक्ष्य जीवन मुक्ति है; जिसका अर्थ है कि वह ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करता है। इसी प्रकार हम गीता में भी मनुष्य जीवन का लक्ष्य 'आत्म-शुद्धि' और 'ईश्वर-इच्छा की पूर्ति' इन दो बातों में पाते हैं। पहले अर्थात् 'आत्म-शुद्धि' के आदर्श के अनुसार हमारा लक्ष्य आत्म-ज्ञान (सेल्फ रियलाइजेशन) प्राप्त करना है जिस ज्ञान को प्राप्त करके आत्मा ब्रह्म में विलीन हो जाती है और दूसरे अर्थात् 'ईश्वर-इच्छा' की पूर्ति के आदर्श के अनुसार हमारा लक्ष्य ईश्वर से साक्षात्कार होना है। गीता में भी इसके साथ-साथ इसी विचार की प्रधानता है कि मनुष्य जीवन अपने लक्ष्य तक इस जीवन काल में ही पहुँच सकता है। यह ठीक है कि उपनिषद और गीता दोनों में, (गीता में जहाँ तक ईश्वर से साक्षात्कार होने का उद्देश्य है खास तौर पर) विदेह-मुक्ति के आदर्श का भी कहीं-कहीं समर्थन मिलता है। बुद्ध मत में जीवन का लक्ष्य 'निर्वाण' माना गया है। निर्वाण इसी जीवन-काल में प्राप्त हो सकने वाली एक ऐसी अवस्था है जिसमें पहुँच कर मनुष्य पूर्ण शांति का जीवन व्यतीत करता है। अस्तु, यह दूसरे शब्दों में वही जीवन-मुक्ति अथवा मोक्ष का आदर्श है। जैन धर्म में भी पूर्ण पुरुष 'जो कर्म से मुक्त हो गया है' ऐसा पुरुष है जो जीवन-मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्त कर चुका है। अतः मोक्ष का आदर्श यहाँ भी पाया जाता है। न्याय-

वैशेषिक और विशिष्टाद्वैत के संबन्ध में हम पहले लिख चुके हैं। सांख्य में भी जहाँ जीवन का आदर्श कैवल्य अर्थात् प्रकृति से प्राथक्य माना गया है, जो कि मृत्यु के पश्चात् ही प्राप्त हो सकता है, वहाँ जीवन-मुक्ति के आदर्श को भी स्वीकार किया गया है, जिसको प्राप्त करके मनुष्य संसार में रहते हुए भी संसार का नहीं रहता। पूर्व मीमांसा में भी मोक्ष के आदर्श को स्वीकार किया गया है। वेदान्त जो भारतीय दर्शन का सार माना जाता है इस संबन्ध में अन्य दर्शनों से कोई भिन्न मत नहीं रखता। शंकर के अद्वैतवाद के अनुसार मोक्ष प्राप्ति तो आत्मा का स्वभाव ही है। सारांश यह है कि विभिन्न भारतीय दर्शनों में एक तो इस बात में समानता है कि उन सब में ही, जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, मनुष्य जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति माना गया है। इसके अतिरिक्त भारतीय दर्शन शास्त्रों में जो दूसरी समानता पाई जाती है वह यह है कि उन सबही में मनुष्य जीवन के मोक्ष के आदर्श को प्राप्त करने के लिए जिस जीवन-क्रम अथवा आचरण का निर्देशन किया गया है उसका आधार अथवा केन्द्र विन्दु सांसारिक इच्छाओं से मुक्ति प्राप्त करना है। चाहे फिर यह जीवन क्रम गीता का कर्म योग हो अथवा शंकर का कर्म सन्यास। उपनिषद में बताए गए वैराग्य, तथा बौद्ध धर्म में प्रतिपादित आत्म-संयम के आठ मार्ग भी इसी बात का समर्थन करते हैं कि भारतीय दर्शन का ज़ोर इस बात पर रहा है कि मनुष्य अपने आपको सांसारिक बंधनों से मुक्त करे। और इस धारणा का मूल कारण यह मान्यता है कि संसार में मनुष्य को जो दुःख उठाने पड़ते हैं वे केवल इन सांसारिक बंधनों के फल स्वरूप ही। उक्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जीवन संबंधी भारतीय दृष्टिकोण भौतिक न होकर आध्यात्मिक ही सदा से रहा है।

जीवन संबंधी भारतीय दृष्टिकोण को सही अर्थ में समझने के लिये एक बात को स्पष्ट करना यहाँ आवश्यक है। प्रायः यह कहा जाता है कि भारतीय आध्यात्मिकता संसार को मिथ्या मानती है और उसकी वृत्ति जीवन के सामाजिक पक्ष के प्रति सर्वथा नकारात्मक और उपेक्षा की है। पर

वास्तव में यह धारणा सत्य नहीं है। संसार मिथ्या है, इस धारणा में इसी हद तक सचाई है कि हमारा अध्यात्मवाद इस भौतिक जगत् को अन्तिम सत्य नहीं मानता। लेकिन इसका यह अर्थ लगाना भ्रममूलक होगा कि भारतीय दर्शन मनुष्य को जीवन के सामाजिक पक्ष से विमुख करना चाहता है। इस बात के दो प्रमाण हैं। सबसे पहली चीज तो यह है कि भारतीय दर्शन का लक्ष्य पाश्चात्य दर्शन की भाँति केवल ज्ञान प्राप्ति कभी नहीं रहा है। उसका एक मात्र उद्देश्य रहा है जीवन में जो बुराई व्याप्त है उससे मनुष्य जीवन को मुक्त करने का मार्ग दिखाने का। दर्शन और सृष्टि-रहस्य के प्रश्नों पर जो भी विचार किया गया है वह अनायास ही जीवन की समस्याओं के हल पर विचार करने के साथ-साथ हो गया है। इसी लिए हम यह कहते हैं कि भारतीय दर्शन का क्षेत्र केवल तर्क तक ही सीमित नहीं है, वह नीति-अनीति के क्षेत्र को भी छूता है और उसको पार करता हुआ जीवन का जो सबसे उच्च और आध्यात्मिक स्तर है उस तक जाता है। इस बात का एक अन्य प्रमाण भी है। हमारे प्राचीन शास्त्रों में मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सके इसके लिये यह अनिवार्य समझा गया है कि वह पहले जीवन की सामाजिक अवस्था से पार हो और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करे। उदाहरण के लिये हमारे यहाँ चार आश्रमों की जो व्यवस्था की गई थी उसमें गृहस्थ-जीवन का अपना विशेष स्थान रहा है। इसके अतिरिक्त मोक्ष-प्राप्ति के लिये जिन साधनों का विभिन्न भारतीय दर्शनों में उल्लेख किया गया है उनमें उन तमाम सामाजिक और नैतिक गुणों के विकास पर भी जोर दिया है जिनका होना सामाजिक शान्ति, सुव्यवस्था, और प्रगति के लिये आवश्यक माना जाता है। यह बात एक हद तक उन भारतीय दर्शनों के बारे में भी लागू होती है जो मोक्ष प्राप्ति के लिये किसी प्रकार की सामाजिक जीवन की अवस्था और उसके अनुशासन में से होकर गुजरना आवश्यक नहीं मानते। जैसे, बौद्ध और जैन दर्शन में भी अहिंसा, दया, सहानुभूति आदि सामाजिक गुणों

पर काफी महत्त्व दिया गया है। अतः उनके बारे में भी यह आरोप तो नहीं लगाया जा सकता कि वे मनुष्य को समाज-विमुखी बनने को प्रोत्साहित करते हैं। हाँ, यह तो ठीक है कि मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य सामाजिक जीवन से परे, यद्यपि उसके प्रतिकूल नहीं, अवश्य माना गया है। यदि भारतीय अध्यात्मवाद इस संसार को मिथ्या मानता है तो केवल सापेक्षिक दृष्टि से। संसार एक साधारण व्यक्ति के लिये मिथ्या नहीं है। वह उस व्यक्ति के लिये मिथ्या है जो जीवन के आध्यात्मिक स्तर पर पहुँच चुका है। शंकर के मायावाद का यही सही अर्थ है।

जीवन संबंधी उपरोक्त प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण की पृष्ठ-भूमि में हमको महात्मा गाँधी के जीवन दर्शन के सम्बन्ध में विचार करना है। जीवन के प्रति महात्मा गाँधी का दृष्टि कोण भी प्राचीन भारतीय परम्परा के सर्वथा अनुरूप अर्थात् आध्यात्मिक है। वे भी इस सृष्टि का अन्तिम सत्य उसके भौतिक स्वरूप में न देखकर उस परब्रह्म परमात्मा में देखते हैं जो इस समस्त सृष्टि का जनक, रक्षक और पालक है। उन्हीं के शब्दों में 'मेरे लिये ईश्वर सत्य और प्रेम है; ईश्वर नीतिशास्त्र और नैतिकता है; ईश्वर निर्भयता है। ईश्वर प्रकाश और जीवन का स्रोत है और इस पर भी वह इन सबसे ऊपर और परे है। ईश्वर अन्तरात्मा है। वह तो नास्तिक का नास्तिकवाद भी है। वह भाषण और तर्क के परे है। उनके लिये जिनको उसके स्वरूपवान अस्तित्व की आवश्यकता है वह स्वरूपवान है। जिनको उसके स्पर्श की आवश्यकता है उनके लिये वह शरीरवान है। वह अत्यन्त परिष्कृत तत्त्व है। जिनमें श्रद्धा है उनके लिये वह केवल 'है' सब मनुष्यों के लिये वह सब कुछ है। वह हम में है और हमसे परे भी है। वह संतोषी है पर साथ-साथ वह भयानक भी है। वह संसार का सबसे बड़ा जनतंत्रवादी है और सबसे बड़ा निरंकुश शासक है।" उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा गाँधी एक आस्तिक पुरुष हैं और उनकी ईश्वर की सत्ता में जीवित श्रद्धा है। वह ईश्वर को सर्वव्यापी

(इमानेन्ट) और फिर भी इस सृष्टि से परे (ट्रान्सिडेन्ट), दोनों ही मानते हैं। मनुष्य जीवन का उनका उद्देश्य भी मोक्ष-प्राप्ति (सेल्फ रिअलाइजेशन) है। मोक्ष प्राप्ति का ही दूसरा नाम वह सत्य की खोज करना समझते हैं। क्योंकि ईश्वर की अनेक परिभाषाएँ होते हुये भी उनकी दृष्टि से 'सत्य ही ईश्वर है', यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक और इस लिये सर्वश्रेष्ठ है। सत्य अथवा ईश्वर-प्राप्ति का साधन वह गीता में बताए कर्मयोग में ही पाते हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है कि "मैं मानवता की सेवा के द्वारा ईश्वर के दर्शन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि ईश्वर न तो स्वर्ग में है और न नीचे पाताल में। वह तो हम में से हर एक में है।" गाँधीजी का समस्त जीवन मानव जाति की सेवा का जीवन है और उपरोक्त विश्वास का एक जीवित प्रमाण है। उन्होंने अन्यत्र लिखा है "सर्वव्यापी और नित्य सत्य के साक्षात् दर्शन करने के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य ईश्वर की सृष्टि के छोटे से छोटे प्राणी से प्रेम करे, ठीक उसी प्रकार जैसे कि वह अपने आप से करता है। और जो मनुष्य इस बात का प्रयत्न करता है वह जीवन के किसी क्षेत्र से अपने आपको पृथक् नहीं रख सकता। यही कारण है कि मेरी सत्य की साधना ने मुझको राजनीति के क्षेत्र में ला खड़ा किया। इसी प्रकार "संसार के मिट जाने वाले राज्य की मुझे कोई इच्छा नहीं है। मैं तो स्वर्ग के राज्य के लिये प्रयत्नशील हूँ, जिसका दूसरा नाम आध्यात्मिक मुक्ति है। मेरे लिये मुक्ति का मार्ग मेरे देश और मनुष्य जाति की निरन्तर सेवा का मार्ग है। प्रत्येक प्राणी के साथ मैं आत्मसात होना चाहता हूँ। गीता के शब्दों में, मैं मित्र और शत्रु दोनों ही के साथ शान्तिपूर्वक रहना चाहता हूँ। अस्तु, मेरी देश भक्ति अनन्त स्वतंत्रता और शान्ति की भूमि की ओर की मेरी यात्रा में एक अवस्था मात्र है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मेरे लिये धर्म से पृथक् कोई राजनीति नहीं है। राजनीति धर्म की अनु-गामिनी है। धर्म से शून्य राजनीति मृत्यु का एक जाल है, क्योंकि उससे

आत्मा का हनन होता है।" इस सबका अर्थ एक ही है और वह यह कि गाँधी की आध्यात्मिकता इस संसार से अलग हट कर किसी गुफा में बैठकर ईश्वर का भजन करने में नहीं है। वह तो संसार में रहते हुए उसमें कार्य करने और प्राणी मात्र के प्रति प्रेम भाव रखने में है। दूसरे शब्दों में महात्मा गाँधी का जीवन के प्रति जो आध्यात्मिक दृष्टिकोण है वह उनको समाज-विमुख न बनाकर समाज-सेवक बनाता है। आध्यात्मिकता की यह व्याख्या हमारी उस प्राचीन आध्यात्मिकता के सर्वथा अनुरूप है जिसका हमने ऊपर विवेचन किया। अतः यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि महात्मा गाँधी भारतीय महापुरुषों की उस अनवरत शृंखला में जो प्राचीन काल से अब तक चली आई है एक उद्दीप्त सूर्य के समान हैं। उनका जीवन-आदर्श हमारी भारतीय परम्परा के साथ बिल्कुल मेल खाता हुआ है। इसी लिये यह कहना सही है कि जबकि जवाहर लाल ने भारत को खोज निकाला है महात्मा गाँधी ने भारत का निर्माण किया है। क्योंकि गाँधी के रक्त में भारतीय चिन्तन के पाँच हजार वर्षों का सार छिपा हुआ है। वह एक भारतीय नहीं, संपूर्ण भारतवर्ष हैं।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत करना आवश्यक है। गाँधी के जीवन-दर्शन का आधार हमारा प्राचीन दर्शन है, यह तो सही है। पर गाँधी अपने से पूर्व इतिहास की पुनरावृत्ति मात्र नहीं हैं। भारतीय जीवन को उनकी अपनी विशिष्ट देन है। हमारे प्राचीन जीवन दर्शन की, सदियों की धूल उस पर से हटाकर, उन्होंने फिर से केवल चमकाया ही नहीं है पर अपने अनुभव व चिन्तन के द्वारा उसे अधिक व्यापक और पूर्ण करने का प्रयत्न भी उन्होंने किया है। गाँधी का यह प्रयत्न दो दिशाओं में हुआ है।

हम ऊपर इस बात का संकेत कर चुके हैं कि भारतीय दर्शन की यह विशेषता रही है कि उसने अपना उद्देश्य जीवन में व्याप्त बुराई और दुःख से मुक्त होने के मार्ग की खोज करना ही माना। इसीलिए उसमें एक

और उसे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापकता प्रदान की। भारतीय दर्शन और विचार को महात्मा गाँधी की यह दूसरी महान् देन है।

महात्मा गाँधी के जीवन दर्शन के विषय में जो कुछ हम ऊपर लिख चुके हैं उससे यह स्पष्ट है कि गाँधी के जीवन दर्शन का आधार हमारा प्राचीन अध्यात्मवाद ही है। यह भी साफ है कि महात्मा गाँधी तत्वतः एक धार्मिक पुरुष हैं। उन्हीं के अपने शब्दों में "अधिकांश धार्मिक पुरुष जिनसे मेरी भेट हुई है वास्तव में राजनीतिज्ञ हैं। मैं, यद्यपि राजनीतिज्ञ का चोला पहने हुए हूँ, वास्तव में एक धार्मिक व्यक्ति हूँ।" यह होते हुए भी उनकी आध्यात्मिकता सीमित और एकाँगी नहीं है और उन्होंने उसके क्षेत्र को न केवल अधिक पूर्णता बल्कि अधिक व्यापकता देने का भी प्रयत्न किया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को उन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिकोण से छूने की कोशिश की है। और जीवन की समस्त समस्याओं को, न केवल व्यक्तिगत जीवन पर सामूहिक जीवन की समस्याओं को भी, उन्होंने आध्यात्मिक आधार पर हल करने का एक अपूर्व प्रयोग किया है। यहाँ तक कि विशाल राष्ट्रीय और सामाजिक क्रान्ति तक की दिशा को उन्होंने अपने ढंग से बदलने का प्रयास किया है। अतः गाँधी का जीवन दर्शन वास्तव में एक संपूर्ण-जीवन-दर्शन के निर्माण के लिए किया गया एक ऐतिहासिक और अनूठा प्रयोग है। इसी में गाँधी की महानता है और इसी कारण गाँधी की गणना सदा एक ऐतिहासिक पुरुष के रूप में की जाने वाली है।

महात्मा गाँधी की मनुष्य समाज को एक बड़ी देन उनके अहिंसक क्रान्ति का अपूर्व मार्ग है, यह ऊपर लिखा जा चुका है। यहाँ हम इसी विषय में अधिक विस्तार से लिखेंगे।

अहिंसक क्रान्ति का अपूर्व मार्ग

गाँधी की अहिंसक क्रान्ति का स्रोत जीवन के प्रति उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही है। एक आस्तिक पुरुष के नाते जो सारी सृष्टि में ईश्वर का स्वरूप देखता है, गाँधी जी का न केवल मनुष्य मात्र बल्कि प्राणी मात्र की

आध्यात्मिक एकता के सिद्धान्त में विश्वास है। वह लिखते हैं "मेरा नीति शास्त्र मुझे केवल इस बात का दावा करने की ही इजाजत नहीं देता बल्कि उसकी तो यह माँग है कि मैं बन्दर से ही नहीं घोड़े और भेड़, शेर और चीते, साँप और बिच्छू से भी अपनी आत्मीयता अथवा जातीयता अनुभव करूँ। (ये जीव भी इस आत्मीयता का अनुभव करें यह आवश्यक नहीं है।) वह कठोर नीति शास्त्र जिसका मेरे जीवन पर शासन है, और मेरे विचार से जिसका शासन प्रत्येक स्त्री और पुरुष के जीवन पर होना चाहिये, हम पर यह एक तरफा दायित्व आरोपित करता है। और इसका कारण यह है कि केवल मनुष्य ही का निर्माण ईश्वर की प्रतिमा के रूप में हुआ है। और यह प्रमाणित करने के लिए कि केवल मनुष्य का ही निर्माण ईश्वर की प्रतिमा के रूप में हुआ है, यह बताना सर्वथा अनावश्यक है कि सब मनुष्य अपने-अपने शरीर में उस प्रतिमा को व्यक्त करते हैं। इतना ही बता देना काफी है कि कम से कम एक व्यक्ति ऐसा कर सका है। और क्या इस बात से इन्कार किया जाएगा कि मनुष्य जाति के महान् धार्मिक उपदेशकों ने अपने शरीर द्वारा उस प्रतिमा को व्यक्त किया है।" सृष्टिमात्र के सम्बन्ध में आध्यात्मिक एकता के इस सिद्धान्त का अवश्यम्भावी परिणाम है प्राणी मात्र के प्रति समानता, बन्धुत्व, और प्रेम का भाव होना। यही कारण है कि महात्मा गाँधी जीवन में प्रेम का बहुत बड़ा महत्व मानते हैं। उन्हीं के शब्दों में "वैज्ञानिक हमें बताते हैं कि बिना एक संघात्मक शक्ति के जो उन परमाणुओं में व्याप्त है जिससे कि इस पृथ्वी का निर्माण हुआ है उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे, और हमारे अस्तित्व का अन्त हो जायगा। और जिस प्रकार की समस्त भौतिक पदार्थों में एक ऐसी संघात्मक शक्ति (कोहेसिव फोर्स) है जो उन्हें आपसमें बाँधे रखती है, उसी प्रकार समस्त प्राणी मात्र में भी ऐसी संघात्मक शक्ति का होना अनिवार्य है, और इसी संघात्मक शक्ति का नाम 'प्रेम' है।...जहाँ प्रेम है वहीं जीवन है। जहाँ घृणा है वहाँ विनाश है।" संक्षेप में गाँधी जी के

लिए जीवन का शाश्वत नियम प्रेम है। वह अन्यत्र लिखते हैं—"मैंने देखा है विनाश के बीच में भी जीवन कायम रहता है। इसलिए विनाश से अधिक ऊँचा कोई नियम अवश्य होना चाहिये। उसी नियम के तत्वावधान में एक सुव्यवस्थित समाज की कल्पना बुद्धि गम्य हो सकती है और जीवन रहने योग्य हो सकता है। और यदि यही जीवन का नियम है तो हमें अपने दैनिक जीवन में उसी का पालन और उसी की अभिव्यक्ति करना है।" और प्रेम रूपी इस जीवन सिद्धान्त के पालन और उसकी अभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम अहिंसा पालन है। अहिंसा की परिभाषा स्वयं गाँधी जी ने इस प्रकार की है "अहिंसा का अर्थ यह है कि पृथ्वी भर में किसी भी वस्तु को, वचन और कर्म, किसी भी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाई जाए।" वास्तव में यदि हम बारीकी से विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि अन्ततः अहिंसा मनुष्य की वृत्ति का प्रश्न है। किसी को मार डालना मात्र ही हिंसा नहीं समझी जा सकती यदि मार डालना उसके स्वयं के हित में है जिसको मारा गया है। सारांश यह है कि अहिंसक वृत्ति का आधार प्राणी मात्र की भलाई की भावना है और इसी लिए अहिंसा का उदय प्रेम से होता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि प्रेम का उदय प्राणी मात्र की आध्यात्मिक एकता के भाव में से होता है। और चूंकि प्राणि मात्र की इस आध्यात्मिक एकता के भाव का आधार यह विश्वास है कि **प्राणिमात्र** में ईश्वर की सत्ता विद्यमान है, **प्राणिमात्र** की एकता का यह भाव ही महात्मा गाँधी के लिए वह अन्तिम सत्य है जिसकी प्राप्ति मनुष्य मात्र का ध्येय है। उपरोक्त दृष्टि से यदि हम विचार करें तो मनुष्य जीवन का क्रम स्वतः ही यों निश्चित हो जाता है; समस्त सृष्टि में जिसका मनुष्य भी एक अंग मात्र है ईश्वर ही एक चिर सत्य है। इस चिर सत्य की साधना करना हमारे जीवन का सच्चा उद्देश्य है। इसका अर्थ है कि मैं जीवित रूप से इस बात का अनुभव करूँ कि "वही तू है।" इसी का दूसरा रूप **प्राणिमात्र** के प्रति प्रेम की भावना होना है। और

प्रेम के इस भाव को हम अहिंसा-भाव कहते हैं। सारांश यह निकला कि सत्य जीवन का लक्ष्य है और अहिंसा उसका साधन।

जो व्यक्ति अहिंसा धर्म का पालन करना चाहता है, उसका प्रथम कर्तव्य यह है कि वह अपने निजी जीवन को अहिंसा के ढाँचे में ढाले। वह इस बात का प्रयत्न करे कि उसका स्वयं तो ऐसा कोई व्यवहार अथवा आचरण नहीं होता जिससे किसी दूसरे मनुष्य का अहित, शोषण अथवा उसके प्रति अन्याय हो। क्योंकि यदि मनुष्य और मनुष्य की समानता और बंधुत्व एक चिर सत्य है तो एक के द्वारा दूसरे की हिंसा, शोषण, अथवा अहित उतना ही बड़ा असत्य है। यह आचरण किसी व्यक्ति के लिए तभी संभव है जब कि वह अपने मन और शरीर की स्वच्छता की ओर अधिक से अधिक ध्यान दे। यही वह आत्म-संयम और आत्म-अनुशासन का मार्ग है जिसके पालन करने पर हमारे प्राचीन महापुरुषों और हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों ने इतना ज़ोर दिया है। महात्मा गाँधी का भी व्यक्तिगत जीवन की स्वच्छता और उच्चता पर उतना ही ज़ोर है। वे चाहते हैं कि मनुष्य अपनी इन्द्रियों और भौतिक इच्छाओं पर विजय प्राप्त करे और अपने सामाजिक कर्तव्यों का पालन गीता में बताए अनासक्ति-भाव से करे। इस दृष्टि से मनुष्य को अपने जीवन में कुछ व्रतों का पालन करना चाहिये। महात्मा गाँधी भी भारतीय परम्परा के सर्वथा अनुरूप निम्न लिखित व्रतों के पालन पर विशेष महत्व देते हैं: ब्रह्मचर्य, अस्वाद, निर्भयता, अस्तेय, अपरिग्रह, न्यूनतम शरीर श्रम, स्वदेशी, सर्व-धर्म-समभाव, तथा अस्पृश्यता। इसी सूची में अहिंसा और सत्य को और जोड़ देने से ही सेवा के वे ग्यारह नियम हो जाते हैं जिनका पालन मनुष्य मात्र को करना चाहिये।

अहिंसा धर्म के पालन करने का एक पक्ष तो वह है जिसका उल्लेख हमने अभी किया। इसका संबंध मनुष्य के अपने जीवन से है, अर्थात् वह स्वयं ऐसा कोई कार्य नहीं करता जो असत्य की ओर उसे ले जाए और

जिसका लक्ष्य दूसरों को हानि पहुँचाना हो। पर महात्मा गाँधी इसी से मनुष्य के कर्तव्य की इति श्री नहीं मानते। जीवन सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण अधिक विशाल और व्यापक है। और इसी में उनकी वह विशेषता है जो उनको बुद्ध, महावीर, और ईसा से भी **एक कदम आगे** ले जाती है। जिस सत्य की प्राप्ति हमारा लक्ष्य है वह तो कोई सीमित वस्तु नहीं है। सत्य की व्यापकता को समझाते हुए महात्मा, गाँधी ने लिखा है 'मेरे लिए सत्य सर्वोपरि सिद्धान्त है जिसमें कि अन्य कई सिद्धान्तों का समावेश हो जाता है। यह केवल वचन का सत्य ही नहीं है, मन का सत्य भी है, और हमारी कल्पना का सापेक्षिक सत्य ही नहीं है, बल्कि वह निरपेक्ष सत्य, वह शाश्वत सिद्धान्त, है जो कि ईश्वर है।" उन्होंने अन्यत्र लिखा है "सत्य निरपेक्ष, सर्वकालीन और अनन्त है।" जो सत्य जीवन में इतना व्यापक है, उसके शोधक के लिए यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह इस चिर सत्य की साधना के क्षेत्र को अपने जीवन तक ही सीमित रखे। उसका लक्ष्य और उसका प्रयत्न तो यही हो सकता है कि वह अपनी सत्य की साधना का क्षेत्र अधिकाधिक व्यापक और विस्तृत करता जाए। दूसरे शब्दों में वह इसी बात से संतोष नहीं मान सकता कि वह स्वयं ऐसा कोई कार्य न करे जो असत्य की ओर लेजाने वाला हो, बल्कि उसका प्रयत्न तो यह होगा कि समाज में जहाँ कहाँ भी उसे असत्य और हिंसा दिखाई पड़े उसे मिटाने का प्रयत्न करे। इस संबंध में गाँधी जी के ये शब्द उल्लेखनीय हैं "मेरी आत्मा उस समय तक संतोष नहीं मान सकती जब तक कि वह एक भी अन्याय और दुःख को एक असहाय साक्षी के रूप में देखती रहे।" महात्मा गाँधी की अहिंसक क्रान्ति का जन्म उनकी इसी व्यापक भावना में से होता है। इसको हम तनिक विस्तार से समझने का प्रयत्न करेंगे।

यह हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि सत्य के शोधक के लिए इतना ही यथेष्ट नहीं है कि वह स्वयं किसी का शोषण न करे; किन्तु जहाँ कहीं भी उसे शोषण का, जो सबसे बड़ी असत् शक्ति है, अस्तित्व दिखाई पड़े, वह उसका

प्रतिकार भी करे। इस दृष्टि से यदि हम आज की समाज की दशा पर विचार करेंगे तो स्वाभाविक तौर पर हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि उसका आधार हिंसा और शोषण पर है। इसी प्रकार जब एक देश पर दूसरा देश अपना राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व कायम कर लेता है तो वह भी अनुचित है। इन परिस्थितियों में एक सत्य के शोधक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह समाज को सही आधार पर स्थापित करने के लिए सामाजिक क्रान्ति में और पराधीन राष्ट्र को स्वतंत्र करने के लिए राज्यक्रान्ति में अपना पूरा पूरा योग दे। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में जो समय समय पर राजनैतिक और समाज-सुधार के आन्दोलनों में योग दिया है और आज भी जिस प्रकार समाज-में शांति और न्याय स्थापित करने के लिए वह अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न-शील हैं उसका एक मात्र यही कारण है। गाँधीजी के अहिंसक आन्दोलनों का क्षेत्र जीवन के किसी एक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा है। जिस प्रकार सत्य जीवन के सब अंगों में व्याप्त है उसी प्रकार सत्य को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का भी जीवन के संपूर्ण अंगों को छूना अनिवार्य है। यदि महात्मा गाँधी के पिछले पचास वर्षों से भी लम्बे जीवन का हम सिंहा-वलोकन करें तो हम देखेंगे कि उनके आन्दोलनों का क्षेत्र राजनीति और समाज-सुधार तक ही सीमित न रह कर धर्म और अर्थशास्त्र की परिधि तक भी जाता है। भारत की स्वतंत्रता के आन्दोलन में जो महात्मा गाँधी का स्थान है वह संसार विदित है। राज्य क्रान्ति में उनके योग का यह एक बहुत बड़ा उदाहरण है। उनका हरिजन आन्दोलन समाज सुधार के क्षेत्र में किया गया एक महान् प्रयत्न है। इसी प्रकार १९२१ का खिलाफत आन्दोलन धार्मिक आन्दोलन का और बिहार का चम्पारन आन्दोलन आर्थिक आन्दोलन के उदाहरण हैं। गाँधी जी के इन तमाम आन्दोलनों को हम 'सत्याग्रह' के नाम से पुकार सकते हैं क्योंकि ये सब सत्य के लिए किए गए प्रतिकार मात्र रहे हैं। गाँधी जी द्वारा संचालित इन प्रतिकारों की विशेषता यह रही है कि इनका आधार और स्वरूप हिंसक न होकर अहिंसक रहा है। यही गाँधी के

क्रान्ति मार्ग की विलक्षणता है जिसका उदाहरण अभी तक के मानव जाति के इतिहास में प्रायः नहीं मिलता। प्रश्न उठता है ऐसा क्यों ?

सत्य के शोधक द्वारा किए जाने वाले प्रतिकारों के विषय में यह बात याद रखने की है कि उसके प्रतिकार का स्वरूप उसके (प्रतिकार के) उद्गम और उद्देश्य के अनुरूप ही हो सकता है। यहाँ साधन और साध्य में भेद करना सही नहीं होगा। यही कारण है कि महात्मा गाँधी इस प्रकार के किसी भेद को स्वीकार नहीं करते। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है "जैसे साधन होंगे वैसा ही साध्य होगा।" "साधन एक बीज के समान है और साध्य वृक्ष के; और साधन तथा साध्य में वही अविच्छेद संबंध है जो कि एक बीज और वृक्ष में होता है।" "यदि एक व्यक्ति साधन की चिन्ता कर लेता है, तो साध्य अपनी चिन्ता अपने आप ही कर लेगा।" 'स्वराज्य के लिए किया गया प्रयत्न ही' महात्मा गाँधी की दृष्टि में, "स्वयं स्वराज्य है।" गीता का कर्मयोग भी हमको यही शिक्षा देता है कि अच्छे कार्य का परिणाम भी अच्छा ही होता है। इसके अतिरिक्त जैसा कि गाँधी जी ने भी स्वीकार किया है "मनुष्य के हाथ में तो साधन पर ही नियंत्रण रखना है और साध्य पर उसका कभी नियंत्रण नहीं हो सकता।" मनुष्य जीवन में साधन की ही प्रधानता है, यह बात इस प्रकार भी समझाई जा सकती है। 'साधन' एक निरन्तर बहने वाला मार्ग है और सामान्यतया जिसे हम 'साध्य' मानते हैं, वह तो उस मार्ग पर स्थित माइल-स्टोन्स हैं, जिनका उस मार्ग से स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं। उनका महत्व तो केवल इतना ही है कि हम कितना मार्ग तय कर चुके इसके वे द्योतक हैं। और मनुष्य का जीवन भी तो एक मार्ग के रूप में है। 'जीवन' का अर्थ ही निरन्तर चलना है। 'गति' ही जीवन है। अतः जीवन में साधन का क्या स्थान है, यह प्रश्न ही ग़लत है। 'जीवन' तो स्वयं ही साधन है। परन्तु साधन है किस बात का ? उस स्थिति का जो इस 'साधन' के अन्त में मनुष्य प्राप्त करना अपना लक्ष्य मानता है। और वह स्थिति है मोक्ष की, आत्मा-ज्ञान की, या यों कहें कि सत्य की, निरपेक्ष

और शाश्वत तथा अनन्त सत्य की, प्राप्ति की। सारांश यह है कि हमारा समस्त जीवन क्रम सत्य की शोध में किए जाने वाले एक निरन्तर प्रयत्न के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता और न हमारे जीवन में इस नियम का कोई अपवाद ही हो सकता है। अतः एक सत्याग्रही द्वारा किए गए प्रतिकार का स्वरूप भी उसकी सत्य-साधना के अनुरूप ही होगा। और चूँकि उसकी साधना का लक्ष्य है समस्त प्राणी मात्र के प्रति समानता और प्रेम के भाव का अनुभव करना, इसलिए उसके द्वारा किया गया प्रतिकार भी प्रेम पूर्ण के अलावा दूसरी प्रकार का हो नहीं सकता। दूसरे शब्दों में एक सत्याग्रही का प्रतिकार अहिंसक प्रतिकार होगा। यही महात्मा गाँधी की अहिंसक क्रान्ति का वह अपूर्व मार्ग है जिस पर चलने का वह बराबर प्रयत्न कर रहे हैं और जिस मार्ग पर चलने को वह सारे मनुष्य समाज का आह्वाहन करते हैं।

इस सम्बन्ध में जो दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि इस प्रकार से किए जाने वाले अहिंसक प्रतिकार अथवा सत्याग्रह का उद्देश्य क्या होता है। यदि सत्य का शोधक इस बात में जीवित श्रद्धा रखता है कि प्रत्येक प्राणी में ईश्वर रूपी सत्य विद्यमान है, तो उसके द्वारा किए जाने वाले प्रतिकार का उद्देश्य भी केवल यही हो सकता है कि वह अपने विरोधी में जिसका वह प्रेम-पूर्ण प्रतिकार करने जा रहा है, उस सत्य को जाग्रत करे और उसको सत्य-दर्शन कराए। क्योंकि अगर सत्य का अपने में अस्तित्व होते हुए भी कोई व्यक्ति उसे नहीं पहचानता है और अपने जीवन में असत्य व्यवहार करता है, जो कि सब प्रकार के शोषण, हिंसा और साम्राज्यवाद के मूल में है, तो इसका एक मात्र कारण उस व्यक्ति का अज्ञान और मोह ही है जिसके प्रभाव में अपने अन्तर में स्थित सत्य को वह नहीं पहचान सक रहा है। उसके इस अज्ञान और मोह का नाश करना और उसमें जो सुप्त शक्ति है उसको जाग्रत करना ही सत्य के शोधक का एक मात्र लक्ष्य हो सकता है जिसकी पूर्ति वह अपने प्रतिकार के द्वारा करना चाहता है।

इस प्रकार के अहिंसक प्रतिकार की यदि कोई मर्यादा है तो वह प्रतिकार करने वाले अथवा वालों की अपनी स्वयं की पात्रता की है। दूसरों के अज्ञान का नाश करने के लिए यह आवश्यक है कि हम स्वयं ज्ञानवान हों। अगर हम दूसरों में सत्य जागृत करना अपना उद्देश्य मानते हैं, तो पहले स्वयं अपने में सत्य जागृत करना आवश्यक है। इसका एक मात्र उपाय यही है कि मनुष्य स्वयं अपने को आत्म-संयम और आत्म अनुशासन के द्वारा ऊँचा उठाए। इसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। जितनी अधिक आत्म-शक्ति प्रतिकार करने वाले के पास होगी, उतनी ही अधिक उसको सफलता प्राप्त होगी। और यदि उसका प्रतिकार उसकी शक्ति के बाहर होगा, तो वह अपनी ही हानि इस प्रतिकार के द्वारा कर लेगा।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। प्रतिकार करने वाले को पहले अपने में स्वयं प्रतिकार की पात्रता उत्पन्न करनी चाहिये, यह सही है। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि जब तक कोई व्यक्ति स्वयं अपने जीवन में पूर्ण सत्य का दर्शन नहीं कर लेता और अपने व्यवहार में पूर्ण अहिंसा नहीं ले आता, उसको दूसरों का अहिंसक प्रतिकार करने का कोई अधिकार नहीं है। वास्तव में तो सत्य शोधक को अपने जीवन में सत्य दर्शन करने के लिए ही दूसरों का प्रतिकार भी करना पड़ता है और इस प्रकार अपने सत्य-दर्शन के सिलसिले में ही वह अनायास दूसरों को सत्य-दर्शन कराने का कारण भी बन जाता है। दोनों क्रियाएँ साथ-साथ ही चलती हैं। इस संबंध में गाँधी जी का भी यही मत है। वह लिखते हैं "संपूर्ण सत्य का ज्ञान मनुष्य के लिए संभव नहीं है। उसका कर्तव्य तो यही है जो उसे सत्य जिस समय लगे उसी के अनुसार वह अपना जीवन ढाले, और ऐसा करने में पवित्रतम साधन, अर्थात् अहिंसा, का उपयोग करे।" अन्यत्र वह लिखते हैं "जहाँ तक मुझे इस निरपेक्ष सत्य का ज्ञान नहीं होता, वहाँ तक मैं उस सापेक्षिक सत्य का अनुसरण करता

हूँ जो कि मैं देख पाता हूँ।" पर हम अपनी प्रत्येक इच्छा को अपनी अन्तरात्मा की पुकार मान कर उसका आग्रह न करने लगें, इससे बचने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने आप आत्म-संयम और आत्म-अनुशासन का पालन करे।

सत्याग्रह के जिस उद्देश्य का हमने ऊपर उल्लेख किया है उसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सत्याग्रही सत्याग्रह के समय कुछ बातों का विशेष रूप से ध्यान रखे। अहिंसक प्रतिकार अथवा सत्याग्रह का लक्ष्य यदि विरोधी के हृदय की अज्ञानता को मिटा कर, उसमें सुप्त सत् शक्ति को जागृत करना है तो यह आवश्यक है कि प्रतिकार करने वाला अपने प्रतिकार से विरोधी के हृदय में अपने प्रति श्रद्धा, विश्वास और प्रेम का भाव उत्पन्न करे, उस पर अपनी सद्भावना अंकित करे, और उसे सर्वथा भयमुक्त करे। इसका अर्थ यह है कि सत्याग्रही विरोधी के प्रति अपने व्यवहार में निन्दा, स्वार्थपरायणता, छल-कपट, और धौंस-धमकी का त्याग करे और सचाई, आत्म बलिदान, विरोधी-हितेच्छा, और न्याय-निष्ठा का अनुसरण करे। न इसमें गुप्त साधनों का स्थान है और न पूर्व योजना का। विरोधी में वह पूरा विश्वास करता है। ऐसी दशा में एक सत्याग्रही के लिए यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता कि वह अपने विरोधी की परेशानी और बेबसी से लाभ उठाए। सत्याग्रही अपनी संगठित शक्ति का प्रदर्शन भी इस रूप में नहीं होने देगा कि उसका असर विरोधी को भयभीत करना हो। उस संगठित शक्ति का उपयोग अपनी आत्म बलिदान की भावना को अधिक दृढ़ बनाना और उसके द्वारा आस-पास वातावरण को अधिकाधिक अहिंसक बनाना ही हो सकता है। इस दृष्टि से वे तमाम सामूहिक प्रदर्शन, जो विरोधी की परेशानी और भय को बढ़ाने वाले हों, सत्याग्रह के लिए त्याज्य हैं।

उक्त आधार पर किये गये अहिंसक प्रतिकार का परिणाम क्या होगा, यह समझना कठिन नहीं है। सत्याग्रह का मार्ग आत्म-बलिदान का

कठोरतम मार्ग है। उसका परिणाम विरोधी के हृदय के अज्ञान का नाश करना होगा। गाँधी जी ने लिखा है "कठोर से कठोर हृदय और गहरे से गहरा अज्ञान बलिदान के उस उगते हुए सूर्य के सामने नष्ट हो जाना चाहिये जिसके पीछे न क्रोध की भावना है और न बुराई की।" इस प्रकार अज्ञान के नाश होने का अवश्यम्भावी परिणाम होगा विरोधी के हृदय में जो सुप्त सत् शक्ति है उसका जाग्रत होना। इस सत् शक्ति के जाग्रत होने पर वह अपनी भूल को स्वयं स्वीकार करेगा और सत्याग्रही की बात को इच्छापूर्वक मंजूर करेगा। यहीं सत्याग्रह का अन्त होगा, विरोधी का हृदय-परिवर्तन होगा और दोनों पक्ष के लिए सत्याग्रह का परिणाम कल्याणकारी होगा। दोनों पक्षों में प्रेम और सद्भाव उत्पन्न होगा और सत्याग्रह के परिणाम स्वरूप जो स्थिति उत्पन्न होगी उसकी रक्षा करना और उसको स्थायी बनाना दोनों ही पक्ष अपना कर्तव्य समझेंगे। यहाँ पर बाद में षड्यंत्र रचकर अथवा अवसर पाकर उस स्थिति को बदलने का कोई प्रश्न ही नहीं आता। हाँ, यदि सत्याग्रही ने अपने सत्याग्रह आन्दोलन में सत्याग्रह के नियमों की अवहेलना की है और विरोधी ने उसकी बात केवल भय अथवा अपनी लाचारी के कारण ही मान ली है, तो जिस हद तक ऐसा हुआ है उसी हद तक सत्याग्रह का परिणाम विरोधी के हृदय का परिवर्तन करना नहीं होगा और इसी लिए वह स्थायी भी नहीं होगा। इसका एक मात्र कारण सत्याग्रही की स्वयं की अपूर्णता है। अस्तु, सत्याग्रही अपनी पराजय का कारण अपने में ही देखेगा, अपने विरोधी में नहीं।

यह हम पहले लिख चुके हैं कि महात्मा गाँधी का सत्याग्रह एक ऐसा अस्त्र है जिसका जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोग किया जा सकता है। सत्याग्रह करने के ढँग का जहाँ तक सवाल है यहाँ केवल इतना ही लिख देना आवश्यक है कि वह भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न हो सकता है। सत्याग्रह का कौन सा ढँग किस समय अपनाया

जाए इसका निर्णय सत्याग्रही स्वयं ही करता है। मोटे रूप में हम कह सकते हैं कि सत्याग्रह दो प्रकार का होता है—व्यक्तिगत, और सामूहिक। दोनों ही प्रकार के सत्याग्रह एक से अधिक रूप ले सकते हैं और उनकी व्यापकता में भी भेद हो सकता है। असहयोग और सविनय भंग दो सब से प्रचलित रूप हैं जिनका हमारे देश में एक से अधिक बार प्रयोग हुआ है। असहयोग के भी कई रूप हो सकते हैं। व्यक्तिगत सत्याग्रह में उपवास का भी बहुत बड़ा स्थान है पर इस अस्त्र को काम में लाना भी उतना ही कठिन है। महात्मा गाँधी ने स्वयं इस अस्त्र का कई बार उपयोग किया है।

महात्मा गाँधी के अहिंसक प्रतिकार के विषय में जो कुछ लिखा जा चुका है उससे उसके संबंध में यथेष्ट जानकारी हमें हो सकेगी, यह आशा की जा सकती है। महात्मा गाँधी की यह मान्यता है कि इस प्रकार से किया गया अहिंसक प्रतिकार हिंसक प्रतिकार की अपेक्षा कहीं अधिक कारगर और समाज के लिए कल्याणकारी होता है। उसकी अपनी अनेकों विशेषताएँ हैं। पहली बात तो यह है कि जहाँ हिंसक प्रतिकार केवल नकारात्मक और ध्वंसात्मक होता है वहाँ अहिंसक प्रतिकार सकारात्मक और निर्माणकारी होता है। विध्वंस के साथ ही साथ उसका निर्माण भी चलता है। क्योंकि वह 'पाप' का नाश करते हुए 'पापी' का उद्धार करना चाहता है। स्वयं गाँधी जी ने लिखा है कि "मेरा असहयोग यद्यपि मेरे विश्वास का एक अंग है, सहयोग की एक भूमिका है। मेरा असहयोग तरीकों और व्यवस्थाओं से है, व्यक्तियों से कभी नहीं।" "मैं प्रवृत्ति से सहयोग देने वाला हूँ, मेरे असहयोग का उद्देश्य भी सहयोग को तमाम छोटेपन या क्षुद्रता और असत्य से मुक्त करने का रहता है, क्योंकि मैं मानता हूँ कि इस प्रकार के सहयोग का नाम मात्र का भी महत्व नहीं है।" अस्तु, अहिंसक प्रतिकार विभाजन के स्थान पर एकता स्थापित करता है। इसके अतिरिक्त अहिंसक प्रतिकार की क्षमता के विषय

में भी गाँधी जी की बड़ी श्रद्धा है। वह लिखते हैं—"और जब कि एक बार उसका (सत्याग्रह का) आरंभ हो जाता है, उसका प्रभाव, यदि वह काफी गहरा है तो, समस्त संसार पर फैल सकता है।" "वास्तव में एक पूर्ण सत्याग्रही अन्याय के विरुद्ध न्याय की लड़ाई में विजय प्राप्त करने के लिए काफी है।" "सत्य के साथ 'अहिंसा' को जोड़ देने से तुम समस्त संसार को अपने चरणों में झुका सकते हो।" सत्याग्रह की इस अपूर्व क्षमता का कारण यह है कि इसका आधार आत्म-शक्ति है, शरीर-बल नहीं। और आत्म-शक्ति शरीर-बल से सदा ही उत्तम है। सत्याग्रह की एक और विशेषता यह है कि इसमें पराजय के लिए कोई स्थान नहीं। पर पराजय से यहाँ क्या अर्थ है, यह समझ लेना आवश्यक है। सत्याग्रह का मूल उद्देश्य है अपनी अर्थात् सत्याग्रही की आत्मोन्नति करना। अस्तु, जब तक सत्याग्रही सत्याग्रह के नियमों का सच्चाई से पालन करता है उसका एक ही परिणाम हो सकता है और वह यही कि जिस हद तक वह सत्याग्रह के सिद्धान्तों का पालन करने में सफल होता है उसी हद तक उसकी आत्मोन्नति होती है और यही सच्ची विजय है जिसकी उसे चिन्ता है। इस आध्यात्मिक विजय के साथ साथ उसे सांसारिक दृष्टि से दिखावे योग्य और व्यावहारिक जीवन में उपयोग में आसकने योग्य विजय मिलती है या नहीं, यह दूसरा प्रश्न है जिसका उत्तर कई बातों पर निर्भर है। पर एक सत्याग्रही की दृष्टि से तो इस विजय का उतना महत्त्व नहीं है जितना आध्यात्मिक विजय का जिसका मिलना निश्चित है। इसी अर्थ में यह कहना सही है कि सत्याग्रह में पराजय के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी बात को महात्मा गाँधी ने इन शब्दों में प्रकट किया है "सत्याग्रह अपना स्वयं पुरस्कार है।" सत्याग्रह की एक और बड़ी विशेषता जिसका हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं यह है कि उसका परिणाम स्थायी होता है।

महात्मा गाँधी के अहिंसक क्रान्ति मार्ग की यह एक रूपरेखा है जो

हमने उपरोक्त पंक्तियों में उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। आज के विश्व के सामने एक नए समाज के निर्माण का बहुत बड़ा प्रश्न है। यह निर्माण तभी हो सकता है जब हम समाज के वर्तमान ढाँचे को मूल रूप से बदल दें। यही, दूसरे शब्दों में, सामाजिक क्रान्ति अथवा सामाजिक गतिशीलता (सोशिअल डाइनेमिक्स) का प्रश्न है। आज के मानव समाज और उसकी सभ्यता को यदि जीवित रहना है तो उसे इस प्रश्न का वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल नए सिरे से कोई न कोई उत्तर देना होगा। इतिहास ने आज तक इस प्रश्न का एक ढँग से उत्तर दिया है। गाँधी इस प्रश्न का एक दूसरा ही उत्तर हमारे सामने पेश करते हैं। यह भविष्य ही बताएगा कि समाज दोनों में से कौन से मार्ग को अपनाएगा अथवा वह किसी तीसरे मार्ग का, जिसमें दोनों का सामंजस्य होगा, अनुसरण करेगा।

अहिंसक समाज का आदर्श और व्यवहार

अहिंसा के मार्ग पर चल कर गाँधी का लक्ष्य क्या है ? वह व्यक्ति और समाज को किस ओर ले जाना चाहते हैं ? हम लिख चुके हैं कि जहाँ तक व्यक्ति का सम्बन्ध है गाँधी का आदर्श है मोक्ष की प्राप्ति। और जहाँ तक समाज का प्रश्न है उसका भी निर्माण वे अहिंसा के सिद्धान्त के आधार पर करना चाहते हैं ताकि उस समाज में रहने वाले व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा-मार्ग पर चलने में सहायता मिले और इस प्रकार व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक बनें और दोनों का आदर्श एक ही हो। व्यक्ति और समाज का इस प्रकार एक सुन्दर समन्वय हो सकता है। पर गाँधी जो इस बात को समझते हैं कि मनुष्य एक अपूर्ण प्राणी है और इस कारण से उसके द्वारा किसी पूर्णतया अहिंसक समाज के रचना की आशा नहीं कि जा सकती। अस्तु, व्यवहार में उनका लक्ष्य है पूर्णतः नहीं प्रधानतः एक अहिंसक समाज के निर्माण का। अब गाँधी जी की आदर्श और व्यवहारिक समाज की जो कल्पना है उसका हम संक्षेप में विवेचन करेंगे।

यहाँ हमारे मार्ग में एक कठिनाई उत्पन्न होती है। महात्मा गाँधी ने अपनी कल्पना को विस्तारपूर्वक कहीं व्यक्त नहीं किया है। वह अपने लिए 'एक कदम काफी' का सिद्धान्त ही सही मानते हैं। फिर भी समय-समय पर जो अपने विचार उन्होंने प्रकट किए हैं उनके आधार पर एक चित्र तो हम उस समाज-व्यवस्था का, उसके आदर्श और व्यावहारिक दोनों ही स्वरूपों का, उपस्थित कर सकते हैं जिसके लिए महात्मा गाँधी प्रयत्नशील हैं।

पहले हम गाँधी जी के अहिंसक समाज के आदर्श रूप के विषय में लिखेंगे। इस आदर्श समाज का एक मौलिक लक्षण यह होगा कि यह समाज एक राज्य-हीन समाज होगा। महात्मा गाँधी एक दार्शनिक अराजकतावादी हैं। उनके इस अराजकतावाद की नींव उनके अहिंसा के सिद्धान्त में है। जो व्यक्ति अपने जीवन में पूर्ण रूप से अहिंसा का पालन करता है उसके लिए किसी बाहरी नियंत्रण और अनुशासन की आवश्यकता नहीं रह जाती। क्योंकि इस प्रकार के वाह्य अनुशासन की समाज में आवश्यकता इसी लिए हुआ करती है कि समाज का कोई व्यक्ति, समूह, अथवा वर्ग किसी दूसरे व्यक्ति, समूह, अथवा वर्ग के उचित अधिकारों पर आक्षेप न कर सके और इस प्रकार उस व्यक्ति, समूह, अथवा वर्ग के समुचित विकास में बाधा न पहुँचाई जा सके। प्रत्येक समाज में राज्य का यही आधारभूत कर्तव्य है। परन्तु जिस समाज के सदस्य पूरी तौर पर अहिंसक होंगे उसमें इस कर्तव्य के लिए किसी स्वतंत्र संस्था की आवश्यकता नहीं रहेगी। उस समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना शासक होगा, समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को वह भली-प्रकार समझने वाला होगा, और उनका वह पूर्णतया पालन भी करेगा।

राज्यहीन समाज का लेकिन यह अर्थ नहीं है कि उस समाज में किसी प्रकार का संगठन नहीं होगा। इस प्रकार का समाज सत्याग्रहियों के गाँवों का एक संघ होगा। स्वयं गाँधी जी के शब्दों में "अहिंसा के आधार पर

स्थापित समाज में गाँवों में निवास करने वाले कई समूह होंगे जिसमें स्वेच्छा-पूर्वक सहयोग ही उच्च और शांत जीवन का स्तम्भ होगा।" इस प्रकार के समाज का स्वरूप जनतंत्रीय होगा यह तो साफ ही है। अहिंसा जनतंत्र का शुद्ध से शुद्ध स्वरूप है।

इस अहिंसक समाज का दूसरा लक्षण होगा उसका सादा और पवित्र जीवन। प्रत्येक व्यक्ति अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को समझने वाला होगा, जीवन सम्बन्धी उसका दृष्टिकोण बाह्य-मुखी न होकर अन्तर्मुखी होगा, भौतिक इच्छाओं और भौतिक बंधन से वह मुक्त होगा, और समाज सेवा उसका कर्म होगा। ऐसे समाज में बुराई और पारस्परिक लड़ाई झगड़ों का कोई प्रश्न नहीं होगा। आपस के मतभेद भी पारस्परिक बात-चीत के आधार पर तय हो जाया करेंगे या किसी पंच के निर्णय द्वारा। पुलिस, और दण्ड विधान को कोई स्थान नहीं होगा। एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच में समानता होगी।

समाज की जो संस्थाएँ होंगी वे भी समाज के सादा, पवित्र, और समानता के जीवन के अनुरूप ही होगी। समाज-व्यवस्था का निर्माण वर्ण-सिद्धान्त के आधार पर होगा और जीवन के लिये अनिवार्य श्रम, और अपरिग्रह उसकी आर्थिक व्यवस्था के मूल भूत सिद्धान्त होंगे। सारे समाज के संगठन को विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर संगठित किया जाएगा। समाज के आर्थिक ढाँचे में कृषि और गृह-उद्योगों को स्थान होगा और केन्द्रित उत्पत्ति का अभाव होगा। जमींदारी और पूंजीवाद जैसी संस्थाओं का इस समाज में कोई अस्तित्व नहीं होगा। स्वदेशी व्रत का लोग पालन करेंगे जिसका परिणाम होगा स्वावलंबी ग्रामों का एक समाज। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ऐसे समाज में नहीं के बराबर होगा और अन्तर-प्रान्तीय व्यापार भी बहुत थोड़ा ही होगा।

जिस आदर्श समाज का एक चित्र ऊपर खींचा गया है उसमें पहले तो व्यक्ति और समाज के संघर्ष का अवसर ही नहीं आना चाहिये क्योंकि

प्रत्येक व्यक्ति नैतिक नियमों का स्वतः पालन करेगा। परन्तु यदि ऐसा कोई अवसर आए तब भी उसका अहिंसक प्रतिकार के द्वारा ही मुकाबला किया जाएगा।

यह पहले लिखा जा चुका है कि आदर्श समाज की स्थापना गाँधीजी संभव नहीं मानते। इसी लिए व्यवहार में वह प्रधानतः अहिंसक समाज की बात ही करते हैं। प्रधानतः इस अहिंसक समाज और आदर्श अहिंसक समाज में गुण का नहीं परिमाण का भेद होगा। निम्न पंक्तियों में हम इसी भेद को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

पहली बात तो यह है कि महात्मा गाँधी जो समाज व्यवस्था व्यवहार में संभव मानते हैं उसमें राज्य के लिये अनिवार्यतः स्थान होगा। समाज में बराबर ऐसे व्यक्ति और समूह रहेंगे जिनकी प्रवृत्ति असामाजिक होगी और यदि समाज में ऐसे लोगों पर बाह्य नियंत्रण रखने की कोई व्यवस्था नहीं हुई तो सारे समाज में अव्यवस्था फैलने का अन्देशा बना रहेगा। परन्तु राज्य की इस अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए भी वह चाहते हैं कि समाज का ढाँचा अधिकाधिक अहिंसक हो। इसका एक उपाय तो यह है कि राज्य का स्वरूप और उसके कार्य करने का ढँग ही ऐसा हो जिसमें हिंसा और पशु-बल की कम से कम आवश्यकता पड़े। अस्तु, गाँधीजी एक जनतंत्रीय राज्य के समर्थक हैं, जहाँ तक कि राज्य के स्वरूप का सम्बन्ध है। ऐसे जनतंत्रीय राज्य में राज सत्ता वास्तव में जनता के हाथ में होगी। यही कारण है कि महात्मा गाँधी राजनैतिक सत्ता का, जैसा कि आर्थिक सत्ता का भी, केन्द्रीकरण नहीं चाहते। इस आदर्श की पूर्ति का एक मात्र मार्ग यह है कि समाज में जनतंत्रात्मक ग्राम राज्यों की स्थापना हो और हमारे राजनैतिक संगठन का वे ही आधार हों। इस प्रकार के जनतंत्रीय-ग्राम-राज्यों में ही देश की जनता आजादी का उपभोग कर सकेगी। इसी लिये भारतीय ग्राम पंचायतों के विषय में महात्मा गाँधी ने लिखा है

"अहिंसा के आधार पर स्थापित सभ्यता का सबसे निकटवर्तीय उदाहरण भारत की प्राचीन ग्राम पंचायत हैं।"

महात्मा गाँधी आधुनिक जनतंत्रीय प्रणाली के दोषों से भली प्रकार परिचित हैं। इसका कारण यह है कि आज तथाकथित जनतंत्रीय राज्यों में शासन और राजनीति का संचालन जिस मनोवृत्ति से किया जाता है, वही दूषित है। इस मनोवृत्ति के पीछे व्यक्तियों और दलों का संकीर्ण और व्यक्ति-गत अथवा दलगत स्वार्थ, तथा सत्ता-मोह रहता है। यही सब दोषों के मूल में है। आवश्यकता इस बात की है कि शासन और राजनीति का संचालन पवित्र और अमिश्रित जन-कल्याण और जन-सेवा की भावना से किया जाना चाहिये। जीवन के प्रति आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि-कोण हुए बिना यह संभव नही हो सकता।

राज्य की संगठन-विधि का जहाँ तक प्रश्न है, गाँधीजी प्रतिनिधात्मक राज्य-व्यवस्था को ही स्वीकार करते हैं। लेकिन वह यह अवश्य चाहते हैं कि चुनावों आदि के साथ आज जितनी बुराइयाँ पाई जाती हैं उनका अन्त हो। इसका वैसे अन्तिम उपाय तो यही है कि लोगों का नैतिक धरातल ऊँचा हो, जिसका अर्थ है जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण सही हो। जो लोग चुनाव में खड़े हों वे समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति होने चाहिंये, जो सेवा भावों, योग्य और नैतिक दृष्टि से ऊँचे हों। इसी लिये गाँधीजी की यह भी मान्यता है कि राज्य के पदों पर पहुँचने से आर्थिक लाभ नहीं होना चाहिये। "यदि एक व्यक्ति साधारण जीवन में पच्चीस रुपये मासिक से संतुष्ट है तो उसे कोई अधिकार नहीं है कि राज्य का मंत्री अथवा अन्य कोई पदाधिकारी होने पर वह ढाई सौ रुपये मासिक की आशा रखे।" चुनाव करने वालों की योग्यता के संबंध में भी गाँधी जी के विचार जीवन संबंधी उनके दृष्टिकोण को ही प्रकट करते हैं। वह न तो संपत्ति और न शिक्षा ही को चुनाव-योग्यता का आधार बनाने के पक्ष में हैं। चुनाव योग्यता का एक मात्र आधार उनकी राय में शारीरिक श्रम होना चाहिये।

ऊपर हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि गाँधीजी की कल्पना के अहिंसक राज्य का स्वरूप कैसा होगा। इस राज्य की कार्य प्रणाली के बारे में भी हम यही बात पाएँगे कि उसमें हिंसा तथा दबाव के लिये कम से कम गंजाइश होगी। उदाहरण स्वरूप कुछ बातों का उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा। अहिंसक राज्य इस बात का अधिक से अधिक ध्यान रखेगा कि अल्पसंख्यकों के साथ पूर्ण उदारता का व्यवहार किया जाए और तमाम आधार-भूत प्रश्नों पर उनके मत का अधिक से अधिक विचार किया जाए। "बहुमत-शासन का यह अर्थ नहीं है कि वह एक भी व्यक्ति की राय को दबाए, बशर्ते कि वह राय एक सही राय है। एक व्यक्ति की राय का यदि वह राय सही है तो, कइयों की राय की अपेक्षा अधिक महत्व होना चाहिये। सच्चे जनतंत्र के संबंध में मेरी तो यही दृष्टि है।" (महात्मा गाँधी) इसी प्रकार अपराधियों के प्रति भी एक अहिंसक राज्य का व्यवहार विशेष प्रकार का होगा। गाँधीजी यह मानते हैं कि समाज में आज जो इतनी अधिक संख्या में अपराध देखने को मिलते हैं उनका कारण व्यक्तिगत की अपेक्षा सामाजिक अधिक है। जब अहिंसक राज्य में सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं का न्याय पर आधार होगा तो समाज में होने वाले अपराधों में भी कमी होगी। पर फिर भी अपराधों का सर्वथा अन्त तो नहीं होगा। और अहिंसक राज्य के लिए भी यह तो आवश्यक होगा ही कि वह अपराधियों को दण्ड दे। परन्तु दण्ड देने की वृत्ति में अवश्य ही भेद होगा। आज प्रत्येक विचार-शील व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा कि दण्ड का उद्देश्य अपराधी का सुधार करना होना चाहिये। और महात्मा गाँधी के अहिंसक राज्य में भी इसी सिद्धान्त के अनुकूल व्यवहार होगा। मृत्यु दण्ड के लिये ऐसे राज्य में कोई स्थान नहीं होगा, क्योंकि महात्मा गाँधी मृत्यु दण्ड और अन्य प्रकार के दण्ड में केवल मात्रा का ही नहीं पर प्रकार का भेद मानते हैं। एक बार मृत्यु का दण्ड दे देने के पश्चात् उस दण्ड को वापिस लेने

का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता, जब कि दूसरे दण्ड, भूल समझ में आने पर, वापिस लिए जा सकते हैं। गाँधीजी यह भी स्वीकार करते हैं कि अहिंसक राज्य की अपनी पुलिस होगी। पर पुलिस के विषय में उनकी कल्पना आज की पुलिस से सर्वथा मेल नहीं खाती। पुलिस के पास शस्त्र होंगे पर उनकी वृत्ति उनको कम से कम उपयोग में लाने की होगी। पुलिस का अहिंसा में विश्वास होगा। वह अपने आपको जनता का सेवक समझेगी। पुलिस का काम अपराधियों को गिरफ्तार करना होगा ताकि अहिंसा द्वारा जेलों में उनका सुधार किया जा सके। सेना के संबंध में गाँधी जी का मत बदलता सा मालूम पड़ता है। गाँधीजी देश की बाहरी हमले से अहिंसक प्रतिकार द्वारा रक्षा करने के ही पक्ष में हैं। और इसी लिये गाँधी जी अहिंसक राज्य में सेना की आवश्यकता नहीं मानते, यद्यपि उन्होंने कभी कभी यह भी स्वीकार किया है कि सेना के बिना संभव है राज्य का कार्य न चले। गाँधी जी के अहिंसक राज्य की नीति, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का जहाँ तक सम्बन्ध है, शान्ति की होगी ; और वह इस बात का प्रयत्न करेगा कि संसार से वर्तमान साम्राज्यवाद का अन्त हो, प्रत्येक राष्ट्र को स्वतंत्रता प्राप्त हो, और विश्व शान्ति के लिये निःशस्त्रीकरण की नीति को अपनाया जाए। सारांश यह है कि उसकी विदेशी नीति का आधार शान्ति, प्रजातंत्रवाद, और स्वतंत्रता होगी। उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गाँधीजी की कल्पना का अहिंसक राज्य अपनी कार्य प्रणाली में भी अधिक से अधिक अहिंसा का व्यवहार करने की चेष्टा करेगा।

राज्य के स्वरूप और कार्य प्रणाली का आधार अहिंसा रहे इसकी अधिकाधिक चिन्ता की जाने पर भी, गाँधी जी इस बात को नहीं भुला सकते कि तत्वतः राज्य की नीव हिंसा पर है। अस्तु, उनकी राजनैतिक विचार धारा का एक आवश्यक अंग यह भी है कि वे यथा सम्भव राज्य के कार्यक्षेत्र को ज्यादा से ज्यादा सीमित रखना पसंद करेंगे और इस प्रवृत्ति को खूब

प्रोत्साहन देना चाहेंगे कि जनता अपनी आवश्यकताओं को जहाँ तक हो सके राज्य की सहायता के बिना ही पूरा कर ले। इतना होते हुए भी गाँधी जी का इस विषय में किसी प्रकार का मताग्रह नहीं है कि अमुक काम ही राज्य के करने के हैं और अमुक राज्य के करने के नहीं ही हैं। प्रत्येक मामले का निर्णय उसके उपयोग-दुरुपयोग का विचार करके ही करने के पक्ष में उनका मत है। और इस सब की एक मात्र कसौटी होगी आम जनता का हित। गाँधी जी ने इस बात को अनेकों बार स्पष्ट किया है कि यदि जनता और किसी वर्ग विशेष के हितों में संघर्ष आता है, तो उनका समर्थन जनता के साथ ही जाएगा।

महात्मा गाँधी के विचारों के अनुसार प्रधानतः अहिंसक समाज की व्यवस्था में राज्य का कितना और क्या स्थान हो सकता है, इसका उल्लेख हमने किया है। अब हम संक्षेप में इस संबंध में अपने विचार प्रकट करेंगे कि आर्थिक व्यवस्था के संबंध में महात्मा गाँधी की क्या कल्पना है।

महात्मा गाँधी किस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था के समर्थक हैं इस विषय में लिखने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उस आर्थिक व्यवस्था के मूल भूत आधार स्तंभ क्या हैं। जो बात महात्मा गाँधी के जीवन संबंधी अन्य क्षेत्रों के दृष्टिकोण के विषय में हम देख चुके हैं, वही आर्थिक जीवन के बारे में भी लागू होती है। गाँधी जी की आर्थिक विचार धारा का स्रोत भी जीवन संबंधी उनके दृष्टिकोण से ही प्रवाहित होता है। वह इस मत को मानने वालों में से हैं कि मनुष्य का आर्थिक जीवन भी नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर ही संगठित होना चाहिये। उन्होंने इस संबंध में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं "मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मैं अर्थ शास्त्र और नीति शास्त्र में कोई बड़ा अथवा बिल्कुल ही भेद नहीं करता। अर्थ-शास्त्र यदि मनुष्य अथवा राष्ट्र के नैतिक जीवन के लिए हानिकर होता है तो वह अनैतिक है, और इस लिए पाप मय। अस्तु, जो अर्थ-शास्त्र एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण करने देता है अनैतिक है। जो वस्तुएँ

अत्यधिक शोषित मजदूरों ने उत्पन्न की हैं उनको खरीदना और उनका उपयोग करना पाप है। यह भी पाप है कि मैं अमरिका का गेहूँ खाऊँ और मेरा पड़ौसी अनाज का व्यापारी इस लिए भूखों मरे कि उसको कोई ग्राहक नहीं मिलता। इसी तरह मेरे लिए यह भी पाप है कि मैं 'रीजेन्ट स्ट्रीट' (विदेश) में तैयार बढ़िया से बढ़िया कपड़ा पहनूँ जब कि मुझे यह मालूम है कि यदि मैं अपने पड़ौसी कातने वालों और बुनने वालों का तैयार किया हुआ कपड़ा पहनता तो उससे न केवल मेरा तन ढकता बल्कि उनको भी भोजन-वस्त्र मिलता।" महात्मा गाँधी के जीवन संबंधी इस नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि को यदि हम ध्यान में रखें तो हमें उन मूल सिद्धान्तों का महत्व अपने आप ही स्पष्ट हो जाएगा जो गाँधी जी की अर्थ रचना के आधार माने जा सकते हैं। ये मूल सिद्धान्त तीन हैं; (१) सादगी (२) श्रम (३) अहिंसा।

सादगी के प्रश्न को लीजिए। सामाजिक विकास की आधुनिक वृत्ति अधिकाधिक विषमता और पेचीदगी की ओर है। आधुनिक आर्थिक संगठन भी इस वृत्ति का एक जीवित उदाहरण है। हम जीवन की विषमता की ओर जाने की इस प्रवृत्ति को सभ्यता का चिह्न मानते हैं। महात्मा गाँधी इससे सहमत नहीं हैं। इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति के पीछे उनको एक ही बात दिखाई पड़ती है और वह है जीवन में भौतिक इच्छाओं की पूर्ति को आवश्यकता से अधिक महत्व देना और आत्मा की उन्नति की ओर से सर्वथा उदासीन रहना। इसी में वह आधुनिक समाज की अशांति, साम्राज्यवाद, और शोषण की जड़ मानते हैं। इस आधार पर बना आर्थिक और सामाजिक संगठन वह मनुष्य के सच्चे स्वभाव के प्रतिकूल और इसलिए उसकी सच्ची प्रगति और सभ्यता में बाधक मानते हैं। "मनुष्य का मस्तिष्क एक ऐसा पक्षी है जो हमेशा बेचैन रहता है। जितना अधिक इसे प्राप्त होता है उतनी ही अधिक इसकी इच्छा बढ़ती है, और वह हमेशा ही असंतुष्ट रहता है।" "हमारे पूर्वजों ने, इसी लिए, हमारी इच्छाओं पर प्रतिबंध लगाया। उन्होंने इस

बात को समझा कि सुख मुख्यतः एक मानसिक वृत्ति है।" अस्तु, गाँधी जी समाज के स्वरूप को, जिसमें आर्थिक स्वरूप का समावेश हो जाता है, अधिक सरल और सादा करने के पक्ष में हैं। इसमें वह एक बड़ा लाभ यह देखते हैं कि मनुष्य अपनी बनाई व्यवस्था का ही दास न बन कर अपने आपको उसका स्वामी अनुभव करता है और एक खास तरह की स्वतंत्रता का वह उपभोग करता है। यहाँ एक बात साफ़ कर देना आवश्यक है। गाँधी जी जब जीवन की सादगी पर जोर देते हैं तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह यह चाहते हैं कि मनुष्य की वह आवश्यकताएँ भी पूरी न हों जो उसे एक स्वस्थ, कार्यकुशल और योग्य नागरिक बनाने के लिए पूरी होनी चाहिये। भारत में जो निर्धनता आज व्याप्त है उसका अन्त करने के लिए गाँधी जी उतने ही उत्सुक हैं जितना कि अन्य कोई व्यक्ति हो सकता है।

दूसरा मूल भूत सिद्धान्त श्रम का जीवन में क्या स्थान है इससे संबंध रखता है। गाँधी जी की यह मान्यता है कि शारिरिक श्रम एक स्वस्थ समुन्नत, और सुखी जीवन के लिए अनिवार्य वस्तु है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इसके लिए स्थान होना अनिवार्य होना चाहिये। वह आधुनिक युग की इस प्रवृत्ति के सर्वथा विरुद्ध है कि मनुष्य का एक मात्र प्रयत्न यह होना चाहिये कि वह अपने जीवन में शारीरिक श्रम की मात्रा कम से कम करे और अधिक से अधिक अवकाश प्राप्त करे ताकि उस अवकाश का उपयोग जीवन की साहित्य, संगीत, कला आदि जैसी उच्च प्रवृत्तियों के लिए कर सके। अवकाश के लिए आज की इस बढ़ती हुई माँग को वह स्वस्थ सामाजिक जीवन का प्रमाण नहीं मानते। उनका आदर्श यह है कि हम अपने जीवन निर्वाह के लिए जो कार्य करें वही ऐसे स्वस्थकर और अनुकूल वातावरण में करें और वही इस प्रकार का हो जिससे उसको करने से ही हमारा मनोरंजन हो, तथा हमारी रचनात्मक शक्तियों को और कलात्मक प्रवृत्तियों को विकसित होने का पूरा पूरा अवसर मिले। गाँधी जी के शारीरिक श्रम को महत्व देने का यह अर्थ नहीं है कि वह सब प्रकार की कलों के प्रयोग के विरुद्ध हैं

अथवा तो वह यह नहीं चाहते कि जिन कलों के द्वारा मनुष्य को अनेकों प्रकार से थका देने वाले कामों से बचाया जा सकता है उनसे उसको न बचाया जाय और उसके कार्य को नीरस, और कठिन ही बना रहने दिया जाए। वह तो केवल उन मशीनों के विरुद्ध हैं जो साधारण दस्तकार अपने गृह उद्योगों में काम में नहीं ला सकता और जो केन्द्रित उत्पत्ति की आधार है।

गाँधी जी की अर्थ व्यवस्था का तीसरा आधारभूत सिद्धान्त उनकी अहिंसा का है जो अपने व्यापक अर्थ में जीवन के समस्त क्षेत्रों में व्याप्त है। यहाँ तो अहिंसा का केवल इतना ही तात्पर्य है कि गाँधी जी एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था का समर्थन करते हैं जिसमें किसी एक व्यक्ति, वर्ग, अथवा राष्ट्र का दूसरे व्यक्ति, वर्ग, अथवा राष्ट्र द्वारा शोषण के लिए कम से कम अवसर मिल सके। अस्तु, गाँधी जी की अर्थ-व्यवस्था का पूँजीवादी व्यवस्था से कोई मेल नहीं बैठ सकता क्योंकि उसका तो आधार ही शोषण और हिंसा पर है और उसका ही परिणाम है वर्तमान विश्व-अशांति, विश्व-युद्ध, और साम्राज्यवादी राजनीति।

उपरोक्त आधार-स्तम्भों पर जिस अर्थ-व्यवस्था का निर्माण होगा उसका स्वरूप क्या होगा, अब यह प्रश्न हमारे विचारने का है। वह स्वरूप आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था से भिन्न होगा, यह हम ऊपर संकेत कर चुके हैं। जिस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था का एक समाजवादी कल्पना करता है उससे भी यह व्यवस्था कई मौलिक अर्थों में भिन्न होगी। संक्षेप में इस आर्थिक व्यवस्था की रूप-रेखा हम निम्न लिखित शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं: यह आर्थिक व्यवस्था कृषि और गृह-उद्योग-धंधे प्रधान होगी। इसका उद्देश्य स्वावलंबी समाज का निर्माण करना होगा, और इसलिए इसका प्रयत्न प्रत्येक गाँव को, जहाँ तक संभव हो सकेगा, अपने जीवन की आवश्यकताओं के बारे में स्वावलंबी बनाने का होगा और स्वदेशी के सिद्धान्त के अनुसार यह स्वावलंबन गाँव से जिला, जिला से प्रान्त और

प्रान्त से देश की ओर बढ़ता जाएगा। जो चीजें जीवन के लिए जितनी अधिक आवश्यक होंगी, स्वावलंबन की दृष्टि से उनका स्थान उतना ही पहले आएगा। समाज में उत्पत्ति के साथ ही साथ धन का न्यायोचित बटवारा भी हो सके, और आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण न हो, इस दृष्टि से उपभोग की समस्त वस्तुओं का उत्पादन विकेन्द्रित आधार पर ही होगा। जो धंधे अनिवार्य रूप से केन्द्रित आधार पर ही चलाए जा सकते हैं, जैसे रक्षा संबंधी उद्योग, शक्ति उत्पन्न करने वाले उद्योग, भारी रसायन पदार्थों के उद्योग, लोहे और इस्पात के उद्योग आदि, उन पर राज्य का स्वामित्व होगा और वे राज्य द्वारा संचालित भी होंगे। कई अन्य ऐसे आर्थिक कार्य होंगे जैसे नई उत्पादन विधि की खोज के अथवा माल बेचने की व्यवस्था के जो दस्तकार लोग स्वयं नहीं कर सकते और वे भी राज्य को ही करने होंगे। मजदूरों के हितों की भी राज्य द्वारा पूरी रक्षा करने का प्रयत्न किया जाएगा। जमींदारी प्रथा का अन्त हो जाएगा और भूमि का राष्ट्रीयकरण कर लिया जाएगा। जो जमींदार आज अपने आपको जमीन के मालिक समझते हैं उनकी जमींदारी का अन्त होने पर उनको राज्य द्वारा वाजिब मुआवजा दिया जाएगा। इस संबंध में यह बात भी याद रखने की है कि गाँधी जी यह विचार बराबर प्रकट करते आए हैं कि यदि जमींदार और पूंजीपति अपने आपको संपत्ति का अमानतदार मात्र मानें और उसका उपयोग वह जनता के हित के लिए करें तो उनको ऐसे जमींदार और पूंजीपतियों के समाज में बने रहने में कोई आपत्ति नहीं होगी। उपरोक्त आधार पर निर्मित आर्थिक ढाँचे में आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, बैंकिंग तथा करेन्सी की व्यवस्था भी आज से भिन्न रूप में और राज्य द्वारा अथवा राज्य के नियंत्रण में चलाई जायँगी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, बैंकिंग और करेन्सी तो सर्वथा राज्य के हाथ में होगी। जहाँ तक आन्तरिक व्यापार का संबंध है राज्य के नियंत्रण में निजी रूप में भी व्यापार किया जा सकेगा। यह तो स्पष्ट ही है कि आज की

अपेक्षा व्यापार का क्षेत्र काफी सीमित और बैंकिंग तथा करेन्सी की व्यवस्था अधिक सरल होगी, क्योंकि सारा आर्थिक ढाँचा ही आज से अधिक सरल होगा। व्यापार में वस्तुओं के सीधे लेन देन को कम से कम गाँवों में यथेष्ट प्रोत्साहन दिया जाएगा। साराँश यह है कि उपरोक्त आर्थिक व्यवस्था प्रधानतः स्वावलम्बी और विकेन्द्रित होगी जिसमें गाँवों को प्रमुख स्थान होगा और कृषि तथा गृह-उद्योगों का साथ-साथ एक दूसरे के पूरक के रूप में अर्थ-व्यवस्था में आधारभूत स्थान रहेगा।

महात्मा गाँधी के अहिंसक समाज के दो प्रमुख अंगों का, राजनैतिक और आर्थिक, हमने उपरोक्त पंक्तियों में उल्लेख किया। उसके दूसरे अंगों के बारे में विस्तार से लिखना न तो आवश्यक है और न संभव ही। फिर भी दो शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक क्षेत्र में मनुष्य-मनुष्य और स्त्री-पुरुष में समानता और धार्मिक क्षेत्र में पारस्परिक सहिष्णुता का व्यवहार इस समाज में होगा। इस प्रकार अहिंसा के मार्ग पर चल कर महात्मा गाँधी के विचारों के अनुसार किस प्रकार की समाज की कल्पना हम कर सकते हैं, इसका एक चित्र पेश करने का प्रयत्न यहाँ किया गया है।

गाँधी के सिद्धान्त और व्यवहार-एक आलोचना

महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन और उसके अनुरूप जीवन-मार्ग तथा समाज-रचना के संबंध में ऊपर लिखा जा चुका है। अब विचारने की बात यह है कि महात्मा गाँधी के विचारों का वास्तव में मूल्य क्या है? एक प्रकार से यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है। किसी भी महापुरुष के विचारों का मूल्यांकन हम किस दृष्टि से करें? जीवन सम्बन्धी प्रश्नों को हम तीन भिन्न स्तरों से देख सकते हैं: (१) संकीर्ण व्यक्तिगत (२) सामाजिक और नैतिक (३) आध्यात्मिक। महात्मा गाँधी के विचारों की आलोचना हम सामाजिक और नैतिक स्तर से ही करेंगे। जहाँ आध्यात्मिक स्तर मनुष्य की दृष्टि समाज से परे एक ऐसे क्षेत्र में

ले जाना चाहता है जिसका आधार व्यक्तिगत श्रद्धामात्र है और जिसकी अनुभूति भी सर्वथा व्यक्तिगत है, वहाँ संकीर्ण व्यक्तिगत स्तर इस महान् तथ्य की अवहेलना करना चाहता है कि मूलतः मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसका सच्चा हित समाज के हित के साथ अविच्छेद रूप में बँधा हुआ है। समाज की दृष्टि से इन दोनों ही स्तरों का इस अर्थ में कोई उपयोग नहीं है कि वे समाज की परिधि को, समाज को, व्यक्तियों से स्वतंत्र और इसलिए उनकी व्यक्तिगत हैसियत में उनसे भिन्न एक अपने आप में पूर्ण वस्तु मान कर, कहीं भी नहीं छूते। जबकि 'आध्यात्मिक' स्तर समाजोपरि (ए-सोशिअल) है, 'संकीर्ण व्यक्तिगत' स्तर समाज विरोधी (एन्टी-सोशिअल) है। हम अपनी दृष्टि समाज की परिधि में ही रखते हुए महात्मा गाँधी के सिद्धान्त और व्यवहार की आलोचना करेंगे।

पहला प्रश्न है गाँधी के जीवन दर्शन का आज के समाज के लिए क्या महत्व है? कोई भी विचारशील व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा कि वर्तमान समाज एक विचित्र पागलपन की दौड़ में अपनी पूरी शक्ति के साथ दौड़ा जा रहा है, पर उसे यह सोचने का समय और उसकी आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती कि उसकी इस दौड़ का आखिर अन्त क्या होने वाला है। यदि किसी को चिन्ता है तो एक ही बात की कि वह औरों की अपेक्षा इस दौड़ में कहीं पीछे न रह जाए। महात्मा गाँधी का जीवन-दर्शन इस पागलपन की दौड़ में व्यस्त समाज को एक गंभीर चेतावनी है। वर्तमान सभ्यता को वह एक राक्षसी सभ्यता मानते हैं और चाहते हैं कि मनुष्य और समाज इस दौड़ को समाप्त करे और एक सादा और संतुष्ट और इसीलिए सुखी जीवन को ही अपना ध्येय समझे। गाँधी जी की चेतावनी सर्वथा सही और सामयिक है। पर क्या आज का मानव समाज उनकी इस चेतावनी से लाभ उठाएगा? यह एक गंभीर समस्या है। आधुनिक उद्योगवाद और विज्ञानवाद ने मनुष्य के

सामने असंख्य प्रलोभन उपस्थित कर दिये हैं। उन प्रलोभनों को छोड़ना उसके लिए कठिन है। फिर इसमें पहल कौन करे और कैसे करे। जब समस्त संसार ही एक दिशा में आँख बन्द किए भागा जा रहा है तो किसी एक राष्ट्र के लिए उस दौड़ से अलग रहना कितना कठिन है? इन सब बातों का ध्यान करने पर ऐसा लगता है कि संभवतः मानव समाज को महात्मा गाँधी की चेतावनी से लाभ उठाने में समय लगेगा। जब तक संसार के समस्त राष्ट्र इस दौड़ में एक दूसरे के बराबर नहीं आ जाएँगे और उसके दुष्परिणामों को भली प्रकार नहीं भुगत लेंगे, संभवतः वह इस भूल को न समझें और अपने रास्ते को न बदलें। पर जो कुछ भी हो इसमें तो कोई शंका नहीं कि गाँधी की पुकार मनुष्यत्व की पुकार है, समाज के श्रेष्ठ तत्व की पुकार है और उसके सच्चे हित और सच्चे कल्याण की पुकार है। वही समाज सुखी हो सकेगा जो अपने जीवन के सामने सादगी और उच्चता का आदर्श रखकर चलता है। 'सादा जीवन और उच्च विचार' एक बहुत उत्तम सिद्धान्त है जो हमारे दार्शनिकों और विचारकों ने हमारे सामने उपस्थित किया।

गाँधी दर्शन के बाद गाँधी के अहिंसा मार्ग का प्रश्न आता है। तत्वतः जो बातें महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन के बारे में हमने कही हैं वही उनकी अहिंसा के बारे में हैं। आज अपने तात्कालिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रत्येक उपाय को काम में लाने को तैयार रहता है। दैनिक जीवन के व्यवहार में सामाजिक बुद्धि, कर्तव्य बुद्धि और धार्मिक बुद्धि, जो कुछ भी कहें, उसका बहुत कम स्थान रह गया है। मूलतः यही प्रवृत्ति फिर एक वर्ग और दूसरे वर्ग तथा एक राष्ट्र और दूसरे राष्ट्र के आपस के व्यवहार में भी व्यक्त होती है। 'साधन' का जीवन में 'साध्य' से स्वतंत्र कोई स्थान नहीं, इस वृत्ति की आज के जीवन में अति दिखाई पड़ती है। इससे हमारे सामाजिक जीवन में एक खास प्रकार का असंतुलन आ गया है और गाँधी की अहिंसा इस असंतुलन की एक अनिवार्य प्रतिक्रिया है जिसको

उन्होंने एक संपूर्ण दर्शन का स्वरूप देने का प्रयत्न किया। जहाँ तक मनुष्य समाज का सम्बन्ध है इस बात की कोई संभावना नहीं हो सकती कि अहिंसा को हम अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का एक ऐसा सिद्धान्त मान कर चलें जिसका कोई अपवाद ही न हो। क्योंकि इसकी एक बहुत बड़ी शर्त यह है कि हम सांसारिक परिणामों पर से अपना ध्यान हटा लें और केवल मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर चलने का अपने जीवन में प्रयत्न करते रहें। समाज में ऐसे थोड़े से व्यक्ति हो सकते हैं जो जीवन सम्बन्धी इस लक्ष्य में जीवित श्रद्धा रखते हों और इसी के अनुसार अपने जीवन क्रम को ढालें। परन्तु समाज के अधिकांश लोग तो सांसारिक लक्ष्यों को ही सामने रख कर चलने वाले हैं और जिन लक्ष्यों को वह इस प्रकार मान कर चलते हैं उनको समय और स्थान की अमुक मर्यादा में ही वे प्राप्त भी करना चाहते हैं। परन्तु गाँधी जी के विचारनुसार सत्याग्रही के लिए इस प्रकार की कोई मर्यादा नहीं हो सकती। उसका तो एक मात्र उद्देश्य अपने मार्ग पर निरन्तर चलते रहना है, बिना इस बात की चिन्ता किए कि उस मार्ग पर चलने से उसे अमुक परिणाम प्राप्त हो रहा है या नहीं। गाँधी जी ने स्वयं स्वीकार किया है "सत्याग्रही के लिए कोई समय की मर्यादा नहीं है और न कष्ट झेलने की उसकी क्षमता की ही कोई सीमा है। इसलिए सत्याग्रह में पराजय जैसी कोई चीज नहीं हो सकती।" अस्तु, इस प्रकार का अहिंसक सत्याग्रह जिसका अवश्यम्भावी परिणाम हृदय परिवर्तन होगा, उन व्यक्तियों और समाज के लिए जिनके सांसारिक लक्ष्य हैं, अपनी मर्यादा और अनुपयुक्तता रखता है। स्वयं महात्मा गाँधी भी इस तथ्य को एक हद तक स्वीकार करते हैं और तभी उन्होंने उन व्यक्तियों को जिनमें यथेष्ट अहिंसक वृत्ति नहीं है अन्याय के सामने झुकने की अपेक्षा तो हिंसापूर्वक उसका मुकाबला करने की ही सलाह बराबर दी है। यह ठीक है कि वह इस प्रकार का अपवाद किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही स्वीकार करते हैं। क्योंकि यदि इस नियम को प्रत्येक स्थिति

के लिए वह लागू करने दें तब तो उसका परिणाम यह आएगा कि उनके अहिंसक प्रतिकार के लिए प्रयोग का क्षेत्र अत्यन्त सीमित रह जाएगा। महात्मा गाँधी के सत्याग्रह की सफलता का तर्क की दृष्टि से आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में निरपेक्ष सत्य अथवा ईश्वर का तत्व है और उसे जागृत किया जा सकता है। पर बिना इस विवाद में गए कि ऐसा कोई निरपेक्ष सत्य है भी अथवा नहीं, यह बात तो स्वीकार करनी ही होगी कि प्रत्येक मनुष्य और मनुष्यों का समूह जिसे सत्य मानता है वह तो ऐतिहासिक, और सापेक्षिक सत्य ही होता है। महात्मा गाँधी के इस विचार से कि अपूर्ण पुरुष संपूर्ण सत्य को देखने की क्षमता नहीं रखता और इसलिए सापेक्षिक सत्य के द्वारा ही उसे निरपेक्ष सत्य की ओर बराबर आगे बढ़ते रहना चाहिये, उपरोक्त मत की पुष्टि होती है। ऐसी हालत में जब दो व्यक्तियों का सत्य अपना-अपना सापेक्षिक सत्य है तो उनका एक दूसरे के सत्य को स्वीकार करना कैसे संभव हो सकता है। इसका एक परिणाम यह आता है कि उन दो व्यक्तियों के बीच में विशुद्ध हृदय परिवर्तन की तो कोई संभावना नहीं हो सकती, उस समय तक जब तक कि दोनों ही एक ही सत्य का दर्शन नहीं कर लेते। और जो बात दो व्यक्तियों के सम्बन्ध में सही है वह दो वर्गों और दो जातियों के बीच में तो और भी अधिक सही है। इसके अतिरिक्त एक बात और है। हम अपनी कष्ट सहिष्णुता से, उसके प्रति अपनी सद्भावना से दूसरे के मन में अपनी सच्चाई के प्रति विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं, उसके मन में अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर सकते हैं और उसके मनुष्यत्व को जागृत कर सकते हैं जिसके असर में आकर वह हमारी बात को सही मान ले और उसे स्वीकार भी कर ले। परन्तु इसका यह अर्थ भला कैसे हुआ कि हमने उसमें जो ईश्वरीय तत्व है उसका विवेकपूर्ण ज्ञान उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार के आत्म-ज्ञान के लिए तो मनुष्य को स्वयं ही प्रयत्न करना पड़ता है। इसका अर्थ यह होता है कि गाँधी दर्शन में विशुद्ध से

विशुद्ध जिस हृदय परिवर्तन की कल्पना की गई है वह एक मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया है न कि आत्म-ज्ञान की जागृति का कोई परिणाम। उक्त विवेचन से हम इस नतीजे पर आते हैं कि गाँधी जी की अहिंसक प्रतिकार की विधि एक सीमा से आगे सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक नहीं हो सकती। परन्तु यहाँ हमें 'अहिंसक और शान्त' प्रतिकार में भेद करना चाहिये। आज के युग में जब शोषक वर्गों के पास हिंसा इतनी संगठित रूप में मौजूद है, क्या क्रान्तिकारी वर्गों का इस संगठित हिंसा का हिंसा द्वारा ही सफलतापूर्वक विरोध करना संभव है? इसके अतिरिक्त हिंसा के अन्य कई दोष तो हैं ही ऐसी हालत में आज की सामाजिक क्रान्ति के नेताओं के सामने शान्तक्रान्ति का एक सफल 'टेकनीक' खोज निकालने का महत्वपूर्ण प्रश्न है। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में हमारे देश ने इस दिशा में जो प्रयोग किए हैं उनका इस नए 'टेकनीक' के विकास की दृष्टि से बड़ा महत्व है। अतः आज के मानव समाज के लिए गाँधी की अहिंसक क्रान्ति की यही बड़ी देन है।

तीसरी चीज है गाँधी के समाज रचना संबंधी विचारों की। इनके बारे में कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। इनका आधार तो गाँधीजी की अहिंसा का सिद्धान्त ही है। इन विचारों के बारे में किसी प्रकार की मताग्रहता का भी प्रश्न नहीं है। गाँधी के आदर्श को सामने रखते हुये व्यवहार में एक हद तक समझौता स्वीकार करने की आवश्यकता, इन विचारों का एक मात्र आधार है। इस समझौते की कोई निश्चित मर्यादा विचार विनिमय से तय नहीं हो सकती। वह तो व्यवहार ही में तय हो सकती है। गाँधीजी के अनुयायियों तथा अन्य प्रगतिशील विचार के लोगों में एक बड़े विवाद का विषय अर्थ-व्यवस्था में केन्द्रित और विकेन्द्रित उद्योग के सापेक्षिक स्थान का है। मेरा अपना ऐसा विचार है कि इस मत-भेद का निपटारा किसी मताग्रह के आधार पर नहीं किया जा सकता। इसका निपटारा हमें आर्थिक व्यवस्था के विविध उद्देश्य 'सुरक्षा' (इससे

हमारा तात्पर्य प्रत्येक व्यक्ति को आधुनिक सभ्य समाज के अनुरूप रहन-सहन का दर्जा प्राप्त हो, यह है), 'स्वतंत्रता' (राजनैतिक, नैतिक और आध्यात्मिक), और 'अवकाश' की दृष्टि से करना होगा।* यहाँ इतना संकेत कर देना ही काफी होगा कि आज के सत्ता के बढ़ते हुये केन्द्री-करण के युग में, महात्मा गाँधी का समाज-व्यवस्था के निर्माण में विकेन्द्रीकरण पर इतना जोर देना अत्यन्त आवश्यक और सामयिक है। और हमारे भावी समाज-निर्माण की दृष्टि से महात्मा गाँधी की यह एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण सेवा है। सत्ता का स्वभाव ही दुरुपयोग की ओर जाने का है, यह युगों युगों का हमारा अनुभव है। इसका यदि कोई कारगर निराकरण है तो वह है यथाशक्ति और यथासंभव सत्ता को विकेन्द्रित करने का। यही महात्मा गाँधी का भी आज के युग को एक अत्यन्त महत्व पूर्ण संदेश है।

गाँधी—एक मौलिक क्रान्तिकारी

महात्मा गाँधी के विचारों और व्यवहार पर जो आलोचना उपरोक्त पंक्तियों में की गई है उनके आधार पर युग-पुरुष महात्मा गाँधी के संबंध में हम किस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं? महात्मा गाँधी का वास्तविक रूप क्या है? क्या वह एक दार्शनिक हैं? क्या वह एक धार्मिक महापुरुष हैं? क्या वह एक समाज सुधारक हैं? क्या वह एक राजनीतिज्ञ हैं? क्या वह एक क्रातिकारी हैं? क्या वह एक महात्मा हैं? क्या वह एक अवतार हैं? गाँधी की विशेषता यह है कि उनको प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार देखता है। किसी की दृष्टि में वह दार्शनिक हैं, तो किसी की दृष्टि में एक धार्मिक पुरुष; कोई उन्हें एक समाज सुधारक मानता है तो कोई एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ; किसी को वह एक क्रान्तिकारी मालूम पड़ते हैं, तो किसी को एक महात्मा अथवा ईश्वर का अवतार। और इतना ही नहीं गाँधी को

* 'अर्थ सन्देश' अगस्त, १९४७ में इस संबंध में मेरा लेख देखिये।

पाखंडी, एक धर्म-विरोधी, राजनीति के क्षेत्र में एक अराजनीतिज्ञ, और एक प्रतिक्रियावादी के रूप में देखने वाले व्यक्ति भी हैं। श्री राधाकृष्णन् महात्मा गाँधी के संबंध में इन शब्दों में लिखते हैं "अनुभव की [illegible] में वह न एक राजनीतिज्ञ रहते हैं और न एक समाज सुधारक, न एक दार्शनिक या नीतिज्ञ, किन्तु एक ऐसा व्यक्ति जो इन सबसे मिलकर बना है, मूलतः एक धार्मिक पुरुष जो सर्वोच्च और अत्यधिक मानवीय गुणों से सुशोभित है, और जो अपनी अपूर्णताओं के प्रति अपनी जागरूकता और अपनी सदा पाई जाने वाली विनोदी वृत्ति के कारण और भी अधिक प्रिय हो गया है।" हम यह भी देख चुके हैं कि गाँधी का जीवन-दर्शन, गाँधी की अहिंसक क्रान्ति का मार्ग, और समाज-रचना के संबंध में गाँधी जी के विचार वर्तमान असंतुलित विश्व में संतुलन लाने के लिये एक आवश्यक और उचित प्रतिक्रिया के रूप में तो अपना महत्त्व रखते हैं, परन्तु समाज उनको पूर्णतया अपने जीवन का आधार बनाले यह संभव नहीं मालूम पड़ता। इस पर से प्रश्न उठता है कि फिर क्या गाँधी केवल एक प्रतिक्रिया मात्र हैं? गाँधी एक प्रतिक्रिया तो हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। पर वह केवल एक प्रतिक्रिया ही नहीं हैं? क्योंकि एक प्रतिक्रिया की भाँति उनके अस्तित्व का आधार उस क्रिया पर निर्भर नहीं है जिसकी वह प्रतिक्रिया हैं। उनके अस्तित्व का अपना स्वतंत्र आधार है। वास्तव में देखा जाए तो गाँधी एक दिशासूचक हैं, मानव विकास और मानव प्रगति की उस दिशा की ओर संकेत करने वाले, जो मनुष्य को अपूर्णता से पूर्णता की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, तथा अस्वास्थ्य से गतिशील स्वास्थ्य की ओर जाने का मार्ग दिखाती है। चूँकि गाँधी एक दिशा हैं इसलिये वह चलने का एक मार्ग हैं जिस पर निरंतर चलना ही चलना है। उस मार्ग पर कौन कितना चल सकता है यह उस चलने वाले की क्षमता और तज्जनित श्रद्धा पर निर्भर है। पर यह क्षमता और यह श्रद्धा उस मार्ग से पृथक् रह कर नहीं प्राप्त की

जा सकती। वह तो उस पर चलने के फल स्वरूप ही उत्पन्न हो सकती है। इस लिये गाँधी चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समाज उस पर चलने का प्रयास करें। और उस मार्ग पर चलकर अपनी मानवीय क्षमता का विकास करें। गाँधी का उद्देश्य मानव समाज के ढाँचे को बदलने का उतना नहीं है, जितना मानव को स्वयं को बदलने का है। वह उस कुम्हार की भाँति हैं जिसका ध्यान अपने बर्तनों के स्वरूप और उनके आकार प्रकार में परिवर्तन करने की ओर उतना नहीं है जितना कि उस मिट्टी में सुधार करने का, जिससे कि अन्ततोगत्वा वे बर्तन बनते हैं। गाँधी की **अव्यावहारिकता** का यह एक बड़ा कारण है। कई बार गाँधी के उपचार हमारी तात्कालिक समस्याओं को हल करते हुये नहीं मालूम पड़ते। पर ऐसा होना स्वाभाविक है। गाँधी की दृष्टि इससे कहीं अधिक गहरी है। वह "हम को कहते हैं कि हम ही जो कि सामाजिक संगठन को बनाते हैं, बीमारी हैं, और यदि सभ्यता की उन्नति करना है, तो हमको बदलना चाहिये।" इसी लिए हम कहते हैं कि मूलतः गाँधी एक मौलिक क्रान्तिकारी हैं जो मनुष्य समाज ही को नहीं स्वयं मनुष्य में ही क्रान्ति करना चाहते हैं। यही गाँधी का इतिहास में स्थान है, जो कि उनका अपना विशिष्ट स्थान है।

—:०:—

गाँधी-प्रयत्न

श्री किशोरीलाल घ० मश्रुवाला

गाँधी-प्रयत्न

श्री किशोरीलाल घ० मश्रुवाला

गाँधी दर्शन पर लिखने की कम से कम मेरी हिम्मत नहीं। पर या तो स्वयं गाँधी जी लिख दें अथवा उनका चरित्र पूर्ण होने पर कोई विद्वान् लिखें लेकिन गाँधीजी जो आज प्रयत्न कर रहे हैं वह जाहिर है।

इस हमारे विशाल देश में जिसमें करीब ४० कोटि जनसंख्या है और कितनी जातियाँ और बोलियाँ हैं सब के सब किसी एक धर्म या संप्रदाय के हों यह असंभव है। धर्म एक ऐसी चीज है जो राजकीय सीमाओं को नहीं मानता, एक देश विभाग में एक ही धर्म संप्रदाय को मानने वाले लोग हमेशा रहें यह अधिक समय चल नहीं सकता। जब तक मनुष्य बुद्धि से हीन नहीं हो जाता तब तक मानव जाति से धर्म के भेद नहीं मिट सकते। हर पीढ़ी में एकाध नया धर्म-संप्रदाय पैदा हो जाता है और उनमें से एकाध बलवान हो जाता है।

इसलिए मनुष्य का धर्म की एकता के नाम पर राजकीय संगठन करना मानव उद्धार का नहीं बल्कि मानव जाति के निकंदन का बीज बोना है। पीछले करीब १।–१॥ साल से इसका हमें अच्छी तरह सबूत मिल रहा है। हिन्दुत्वाभिमानी, इस्लामाभिमानी और सिखत्वाभिमानी लोगों ने जो अपने अपने धर्म के नाम पर राज्य बनाने के आन्दोलन किये हैं उसके फल हम इस वक्त देख रहे हैं।

गाँधी-प्रयत्न

गाँधी जी इस बुराई को रोकने के लिए आज कठिन परिश्रम कर रहे हैं। अगर हम इस सिद्धांत को मंजूर रखने और ईमानदारी से पालने में कसर करेंगे कि भारतवर्ष के हरेक विभाग में हरेक धर्म और जाति के लोग सुखपूर्वक निडरता से धर्म या जाति के कारण किसी अधिकार से वंचित किये गये बिना रह सकते हैं तो भारत का भावी दूसरी यादव-स्थली ही लावेगा। गाँधीजी इस दुर्भाग्य से देश को बचाना चाहते हैं इसके लिए हमारे दिलों से हम परधर्मी के प्रति घृणा अनादर बिलकुल निकाल दें। यह गांधी प्रयत्न है।

गाँधी : विधायक और स्रष्टा

श्री शान्तिप्रसाद वर्मा

गाँधी : विधायक और स्रष्टा

श्री शान्तिप्रसाद वर्मा

गाँधी जी ने हमें क्या दिया है यह देखने के लिए हमें अपने राष्ट्रीय जीवन के पिछले तीस वर्षों के इतिहास को देखना होगा। हमारे इतिहास के इस महत्वपूर्ण युग और गाँधी जी के व्यक्तिगत जीवन में कोई अन्तर नहीं है : वे मानों एक दूसरे में घुलमिल गये हैं। व्यक्तिगत जीवन में हम सभी अपनी प्रतिभा और शक्ति को लेकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहते हैं। हम में से कुछ ऐसे हैं जो अपने आस-पास फैले हुए एक सीमित वर्ग की शक्ति और प्रतिभा को लेकर छोटे-बड़े जन-आन्दोलन खड़े कर सकते हैं। इनमें से जो अधिक महान् हैं वे इतिहास की गतिविधि को पहिचान कर देश-व्यापी या समाज-व्यापी ऐसी प्रवृत्तियों का निर्माण करने में सफल होते हैं जो युग को एक नई दिशा में मोड़ने की सामर्थ्य रखती हैं। इतिहास में हम उन्हें महापुरुष के नाम से याद करते हैं। गाँधी जी उन व्यक्तियों में हैं जो समस्त विश्व की शक्ति और प्रतिभा को लेकर ऐसी विश्व-व्यापी प्रवृत्तियों का निर्माण करने में लगे रहते हैं जिनका लक्ष्य मनुष्य की आदि-प्रवृत्तियों को ही बदल देना होता है। बुद्ध, ईसा और मुहम्मद के समान गाँधी भी एक नये मानव का निर्माण करने में लगे हुए हैं। महापुरुष और पैगम्बर में मैं यही अन्तर देखता हूँ कि जहाँ महापुरुष अपनी परिस्थितियों का अधिक से अधिक अच्छा उपयोग करता है और उन्हें संसार को एक कदम आगे ले जाने के काम में संयोजित कर देता है, पैगम्बर उन परिस्थितियों का निर्माण

करता है जो संसार को तेजी के साथ आगे ले जा सकें। महापुरुष और पैगम्बर के बीच की एक स्थिति है, ऋषि या चिन्तक की। महापुरुष कर्म करता है, ऋषि या चिन्तक उसके लिए विचारों की प्रेरणा देता है। पैगम्बर को हम एक नये विचार-दर्शन का निर्माण करते हुए भी पाते हैं और कर्म के क्षेत्र में भी सबसे आगे पाते हैं। गाँधी को मैं एक महान् पैगम्बर मानता हूँ।

विचार और कर्म का अद्भुत समन्वय

गाँधी जी के व्यक्तित्व में विचार और कर्म का जैसा सुन्दर समन्वय है किसी दूसरे व्यक्ति के जीवन में वैसे समन्वय की कल्पना करना कठिन है। सच तो यह है कि गाँधी जी का विचार-दर्शन उनके पीछे पीछे चलता है। गाँधीजी ने हमें जो दर्शन दिया है वह किसी शास्त्रीय विवेचन के रूप में नहीं दिया, उनके जीवन के विविध कार्यों में से वह अपने आप फूट निकला है। गाँधीजी ने जो कुछ लिखा है या कहा है वह अपने किसी विशेष काम को आगे बढ़ाने या उसके स्पष्टीकरण की दृष्टि से ही लिखा और कहा है और जहाँ तक उनके कर्म का सम्बन्ध है उन्हें 'एक बार में केवल एक कदम' उठाने में ही विश्वास है। वे केवल यह जान लेना चाहते हैं कि उनका कदम ठीक दिशा में है या नहीं। लक्ष्य के सम्बन्ध में उन्हें कोई चिन्ता नहीं और परिणाम के सम्बन्ध में उन्हें न किसी प्रकार का ममत्व है और न आशंका। गाँधी ने अपना सारा जीवन कर्म में ही बिताया है, और चूँकि वे इस सम्बन्ध में सदा ही प्राश्वस्त रहे हैं कि उनका कर्म सही दिशा में है इसलिये उसके परिणाम भी अच्छे निकले हैं। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि संसार के इतिहास में शायद गाँधी ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनके बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने कभी कोई गल्ती नहीं की। उनके द्वारा उठायी गई बहुत सी बातें उस समय तो ऐसी जान पड़ती हैं जैसे वे गलत हों पर उसके बाद ही परिस्थितियाँ अपने आप को कुछ ऐसा व्यवस्थित करती हुई दिखाई देती हैं कि हम यह अनुभव करना

प्रारम्भ कर देते हैं कि उस गलत दिखने वाले काम से अधिक उपयुक्त काम शायद और कोई नहीं हो सकता था। इसका कारण यही है कि जीवन का जो मूल सत्य है गाँधी जी ने उसे समझ लिया है और उनके जीवन का प्रत्येक कर्म, उनकी वाणी का प्रत्येक शब्द और उनकी आत्मा का प्रत्येक संकेत जीवन की उस मूलभूत सचाई की अभिव्यक्ति के रूप में हमारे सामने प्रकट होता है।

गाँधी : भारतीय राजनीति के क्षेत्र में

गाँधीः एक अद्भुत विधायक और स्रष्टा हैं। आज से तीस वर्ष पहिले जब उन्होंने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया तो एक विचित्र वातावरण हमारे देश में फैला हुआ था। गुलामी की मनोवृत्ति हमारी आत्मा की गहराई तक प्रवेश कर चुकी थी; हम अपने को विवश, निस्सहाय और निराधार पा रहे थे; हमारी राजनीति बढ़िया कपड़ों में सज कर वार्षिक उत्सवों में सम्मिलित हो जाने और लम्बे-लम्बे प्रस्ताव पास कर देने तक ही सीमित थी। विदेशी सत्ता के सामने हमने घुटने टेक दिये थे, हमारा स्वाभिमान मिट चुका था और हमारा प्रचीन गौरव एक मीठे स्वप्न की स्मृति के समान रह गया था। कुछ नौजवान ऐसे थे जिनके प्राणों में तड़प थी, हृदय में कसमसाहट और आत्मा में उद्वेलन। ये लोग अंग्रेजी शासन के प्रति अपनी भावना का प्रदर्शन लुक-छिप कर तैयार किये गये बमों के असफल प्रयोगों में कर लिया करते थे, और बड़ी संख्या में पकड़े जाते थे। आराम कुर्सियों पर पड़े हुये राजनीतिक नेताओं और इन नौसिखिये क्रान्तिकारियों के जीवन और कार्यक्रम में कोई ताल-मेल नहीं था। एक वर्ग दूसरे से घबराता था और दूसरा उसे घृणा की दृष्टि से देखता था। खिन्नता से भरे हुए इस वातावरण में खिलाफत का असंतोष और पंजाब में फौजी कानून का नग्न ताण्डव गोली बारूद में आग की चिनगारी की तरह पड़ गया, हमारी कसमसाहट बढ़ गई, एक तीव्र बेचैनी का हमने अनुभव किया,

आवेश में हम छटपटा उठे पर हम नहीं जानते थे कि किस रास्ते पर हमें चलना है ?

हमारे चारों ओर अँधेरा था तब हमें यह व्यक्ति मिला जिसने हमारी उस सारी कसमसाहट, बेचैनी और टीस को एक चित्रात्मक अभिव्यक्ति का सुन्दर रूप दिया। उसने हमें सचाई पर डटे रहने और बुराई से किसी भी रूप में सहयोग न करने का मार्ग बताया और उस मार्ग पर अडिग, अविचलित, साहसपूर्ण और सधे हुए कदमों से चलने की प्रेरणा दी। भारतीय राजनीति में माहत्मा गाँधी पहिले व्यक्ति हैं जिन्होंने हमें 'नहीं' कहने का साहस दिया। अब तक हम नहीं जानते थे कि एक विदेशी सत्ता द्वारा दिये गये अच्छे और बुरे सभी आदेशों को शिरोधार्य करने के अतिरिक्त हम क्या कर सकते थे ? गाँधी जी ने हमें सिखाया कि जो चीज बुरी है उससे हमें हर्गिज सहयोग नहीं करना चाहिए और इस रास्ते में हम पर जो मुसीबतें आएँ उन्हें हमें झेलना चाहिए। इस मंत्र पर चलने के प्रारंभिक प्रयत्नों में हमें पहिली बार यह अनुभूति हुई कि हमारे शरीर में भी रीढ़ की हड्डी नाम की कोई वस्तु है, उसके स्नायुओं में पहिली बार हमने रक्त-संचार का अनुभव किया और कई सौ वर्षों की गुलामी के बाद हम सीधे खड़े होकर निर्भीकता और साहस के साथ दुश्मन से आँख मिला सके। क्लीवता और निस्सहायता के उस भद्दे वातावरण में गाँधी ने घोषणा की कि अंग्रेजी राज्य 'शैतानी' है और उसे खत्म करने में हमें जुट पड़ना चाहिए। तीस वर्षों के बाद आज हम उसी बड़े साम्राज्य को अपने पैरों से चूर-चूर होकर बिखरा हुआ पाते हैं, यह गाँधी के ही प्रयत्नों का फल है।

क्रान्ति के विधायक और क्रान्तिकारियों के निर्माता

गाँधी जी जन्म से ही क्रान्तिकारी हैं। उनसे अधिक सौम्य, अधिक सरल, अधिक सहृदय, अधिक संवेदनशील, अधिक सात्विक और अधिक नम्र व्यक्ति की कल्पना हम नहीं कर सकते, पर इतिहास ने अपने लम्बे जीवन-काल में उनसे अधिक क्रान्तिकारी व्यक्ति को भी नहीं देखा है।

सब से बड़ी बात तो यह है कि गाँधी जी ने क्रान्ति के साधनों में ही एक अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न कर दी। संसार में और भी क्रान्तियाँ हुई हैं, तलवार और तोप से, हिंसा और षड्यंत्र से, जोर और जबर्दस्ती से, लेकिन गाँधी की क्रान्ति का मार्ग दूसरा है। वे दुश्मन को तलवार के बल पर जीतने में विश्वास नहीं करते, प्रेम से जीतना चाहते हैं। वे दुश्मन को खत्म करना नहीं चाहते, उसके मन से दुश्मनी की भावना को जड़मूल से उखाड़ देना चाहते हैं, और देखना चाहते हैं उसके जीवन की गहराई में सद्वृत्तियों का नवस्फुरण। अपनी इस अद्भुत क्रान्ति से उन्होंने देश को उसकी वर्तमान स्थिति तक पहुँचाया है। गाँधी केवल क्रान्तिकारी ही नहीं, क्रान्तिकारियों के निर्माता भी हैं। जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे वह राजनैतिक हो या आर्थिक या सामाजिक या सांस्कृतिक, उन्होंने क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों और क्रान्तिकारी नेताओं का निर्माण किया है। देश के विविध रचनात्मक कार्यों में लगे हुये व्यक्तियों को हम लें तो देखेंगे कि उनमें जो महान् हैं, क्रान्तिकारी हैं, प्रतिभाशाली हैं वे सब गाँधी की देन हैं। गाँधी के प्रभाव को दृष्टि से ओझल करके यदि हम सोचें तो देखेंगे कि हमारे बड़े से बड़े नेताओं की महानता बहुत पीछे रह जाती है। वह गाँधी का प्रकाश है जिससे आज हम जवाहरलाल को, सरदार को, राजेन्द्रबाबू को और दूसरे नेताओं को चमकता हुआ पाते हैं। कृपलानी की सहृदयता, मौलाना आज़ाद की सौम्यता में भी हम गाँधी की झलक पाते हैं। गाँधी हमारे बीच में न होते तो हम जयप्रकाश और राममनोहर को किसी दूसरे ही रूप में पाते। इसके अतिरिक्त हमारे देश के लाखों व्यक्तियों के जीवन में आज जो एक मृदुता है, बुराई का प्रत्युत्तर भलाई से देने की भावना है, शिष्टता है, रचनात्मक कार्य करने की लगन है, मानवता है, उन सब पर भी कभी एक झलक में दिखाई दिये जाने वाले गाँधी के व्यक्तित्व की महान् प्रतिक्रिया या कभी सुनाई दे जाने वाली गाँधी की गंभीर वाणी का चमत्कार या कभी पढ़ लिये जाने वाले गाँधी के उदात्त विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव है। हम

में से बहुत कम व्यक्ति ऐसे हैं जिनके जीवन पर, जिसके जीवन के सर्व-श्रेष्ठ-कार्य पर, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में गाँधी का प्रभाव न हो। अपने छोटे या बड़े दायरों में हम सभी तो सिकता के उन असंख्य कणों के समान हैं जो सूर्य के प्रकाश में चमक उठते हैं।

इतिहास का सबसे महान् व्यक्ति

मैं समझता हूँ कि इतिहास के किसी भी युग में किसी भी बड़े-से-बड़े महापुरुष का अपने युग के इतने अधिक मनुष्यों के जीवन पर इतना प्रभाव देखने में नहीं आया जितना हम गाँधी का आज के युग पर देख रहे हैं। इसका एक कारण तो यह भी है कि आधुनिक युग में यातायात और प्रचार के साधन इतने व्यापक और वैज्ञानिक हो गये हैं कि एक मनुष्य के लिए अपने विचार और अपनी आवाज लाखों लोगों तक एक साथ पहुँचाना पहिले के मुकाबिले में कहीं अधिक आसान हो गया है, पर इसका मुख्य कारण यह है कि गाँधी जी ने जीवन के जितने विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है, और प्रत्येक पक्ष पर जितनी गहराई से सोचा है उतना किसी भी महापुरुष ने किसी भी युग में नहीं। **राजनैतिक** क्षेत्र में लें तो हम देश के उन बड़े-बड़े नेताओं को जिनकी तुलना हम किसी भी देश के किसी भी युग के बड़े-से-बड़े नेताओं से कर सकते हैं, गाँधी के इशारे पर चलते हुए पाते हैं : पिछले तीस वर्षों में गाँधी जी ही हमारे सबसे बड़े राजनैतिक नेता रहे हैं। **सामाजिक** क्षेत्र पर दृष्टि डालें तो हरिजन-सुधार, शराब-बन्दी, स्त्रियों के उत्थान आदि के जितने भी आन्दोलन हमारे देश में चले हैं उन सब के पीछे गाँधी जी की प्रेरणा काम करती रही है। **धर्म** के क्षेत्र में भी हम गाँधी जी को हिन्दू धर्म में नये प्राणों का संचार करते हुए पाते हैं, और एक अच्छे हिन्दू होने के नाते गाँधी जी एक अच्छे मुसलमान, एक अच्छे पारसी, एक अच्छे सिक्ख और एक अच्छे ईसाई होने का दावा करते हैं, और इन सभी धर्मों को उनके आदर्श से एक नई स्फूर्ति मिली है। हमारी **अर्थनीति** में गाँधी जी एक बड़ी

क्रान्ति के अग्रदूत हैं और हमारे राष्ट्रीय जीवन में खादी और ग्रामोद्योग का जो स्थान है वह इस बात का संकेत करता है कि संसार की विचार-धाराओं के विरुद्ध भी गाँधी जी देश के एक प्रतिभाशाली भाग को किस प्रकार एक नये साँचे में ढाल देने में सफल हुये हैं। **साहित्य** के तो मूल्यों में ही गाँधी जी ने एक आमूल परिवर्त्तन ला दिया है। यह परिवर्त्तन हम गुजराती साहित्य में ही नहीं पाते (गुजराती में तो भाषा के निर्माण तक में गाँधी जी का बहुत बड़ा हाथ है) पर मराठी, हिन्दी, बंगला, तामिल आदि देश के सभी प्रमुख साहित्यों में पाते हैं। "साहित्य में गंदगी को स्थान नहीं होना चाहिए"—ये शब्द इन्दौर-सम्मेलन के अवसर पर साहित्य-परिषद के लिए मुझे एक संदेश देते हुए गाँधी जी ने लिखे थे। सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं की पिछले तीस वर्षों की गतिविधि से जो थोड़ा-बहुत परिचय मुझे रहा है उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि इन साहित्यों में जो सात्विकता है, तेज और स्फूर्ति है, त्याग और बलिदान की तत्परता है, उच्चादर्शों से प्रेम का आग्रह है, उस पर गाँधी के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। गाँधी इतिहासकार नहीं हैं, लेकिन उन्होंने साहित्य को एक तेजस्वी प्रेरणा दी है। गाँधी कलाकार नहीं हैं किन्तु हमारी राष्ट्रीय कला की प्रेरणा का मध्य-विन्दु हैं। संक्षेप में, गाँधी जी ने जीवन का कोई पक्ष नहीं छोड़ा, चाहे उसका सम्बन्ध नीति और सदाचार से हो, चाहे कला और साहित्य से और चाहे विज्ञान और राजनीति से, जिसे उन्होंने एक नई दिशा में न मोड़ दिया हो।

जन-प्रवृत्तियों का निर्माता और संचालक

इस दुबले-पतले और अस्थि-पंजर मात्र व्यक्ति से बढ़कर शक्तिशाली व्यक्ति की कल्पना करना कठिन है। ऐसे स्थलों पर भी जब बड़े-से-बड़े व्यक्ति परिस्थितियों के सामने सिर झुका देने पर विवश हो जाते हैं, गाँधी को हम तूफान की लहरों का नियंत्रण करते हुए पाते हैं। वह समय की गति को ऐसी आसानी से मोड़ देते हैं जैसे कोई बालक

खिलौने की मोटर के पहिये को। भारतीय राजनीति में गाँधी जी ने जब प्रवेश किया तब हमारे मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा, विद्रोह और विद्वेष की भावना फैलती जा रही थी पर उसकी अभिव्यक्ति का कोई साधन हमारे पास नहीं था। अपनी बेचैनी में कुछ लोग हिंसात्मक साधनों का कभी-कभी प्रयोग कर लेते थे पर एक महान् साम्राज्य का जिसकी शक्ति का आधार ही हिंसा पर था, इस प्रकार से मुकाबिला नहीं किया जा सकता था। गाँधी ने हमारी इस घृणा को प्रेम में, एक विफल कसमसाहट को सत्याग्रह में और विरोध की भावना को असहयोग में परिणत कर दिया, जो भावनाएँ हमारे हृदय में छिपी हुई थीं उन्हें एक सुन्दरतम अभिव्यक्ति सन् १६२०—२१ के आन्दोलन में मिली। संसार के इतिहास में यह पहिला मौका था जब एक राष्ट्र ने हिंसा के मार्ग पर अपनी एक छोटी अंगुली तक न उठाते हुए एक बड़े साम्राज्य की जड़ों को झकझोर डाला था। जिस दिन इस महान् जन-आन्दोलन पर हिंसा की हल्की सी छाया का छुटपुटा सा आभास गाँधी ने चौराचौरी के (आज की दृष्टि से) छोटे से हत्याकाण्ड में देखा उन्होंने अपनी असीम शक्ति से फौरन ही आन्दोलन के तूफानी वेग को अपनी मुट्ठी में समेट लिया और एक कुशल जादूगर के समान जब उन्होंने दुबारा मुट्ठी खोली तो हमने बड़ी तेजी के साथ देश की समस्त शक्तियों को विविध रचनात्मक कार्यों में जुट जाते देखा। १६३० में फिर ऐसा अवसर आया जब गाँधी जी ने अंग्रेजी साम्राज्य को युद्ध की चुनौती दी। मार्च १६३० की ऐतिहासिक दाँडी-यात्रा के प्रारंभिक दिनों का जिन्हें स्मरण है वे जानते हैं कि गाँधी जी के इस कदम के प्रति कैसा अविश्वास बहुत से लोगों के मन में था। उन्हीं दिनों प्रान्तीय स्तर के एक बड़े काँग्रेसी नेता ने मुझ से कहा कि वह यह नहीं समझ पा रहे थे कि एक पैदल-यात्रा के अन्त में नमक-कानून तोड़ कर गाँधी जी किस प्रकार देश में एक विशाल आन्दोलन खड़ा कर सकेंगे, परन्तु गाँधी जी अपने चुने हुए साथियों के साथ दाँडी-यात्रा में

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों-त्यों देश में आशा, उत्साह, संगठन और साहस का ऐसा पारावार सा उमड़ता गया कि जब उन्होंने समुद्र-तट पर नमक-कानून को तोड़ा तब देश के प्रत्येक नगर और गाँव में नमक-कानून तोड़ा गया और फिर जिन प्रमुख नेता का मैंने ऊपर जिक्र किया है वह अपने प्रांत में नमक-कानून तोड़ने पर गिरफ्तार किये जाने वाले सबसे पहिले जत्थे में थे।

गाँधी जी जब भी कोई आन्दोलन उठाते हैं तब वह आँधी की तरह हमारे समस्त जीवन को व्याप्त कर लेता है और जब वह उसे बन्द कर लेना चाहते हैं तो यह क्रिया भी स्वाभाविक ढंग से हो जाती है जैसे बादलों के छँट जाने पर नीला आकाश अपनी समस्त गम्भीरता से चमक उठता है और हमें यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न-सा करता दिखाई देता है, जैसे तूफान कभी उठा ही न हो। हमारे देश के बड़े-से-बड़े नेताओं की यह सामर्थ्य नहीं है कि वे गाँधी के समर्थन के बिना कोई बड़ा आन्दोलन चला सकें या उनकी स्वीकृति के बिना किसी बड़े आन्दोलन को बन्द कर सकें। अपने आप उठ खड़े होने वाले आन्दोलनों को भी जिनमें लाखों करोड़ों व्यक्तियों की संवेदनशील भावुकता निहित हो, नियंत्रित करने का साहस भी गाँधी में ही है। आज हममें जो साम्प्रदायिक कट्टरता है उसकी तुलना इतिहास में मिलना कठिन है पर गाँधी जब नोआखाली में बैठ जाते हैं तो वहाँ के मुसलमान अपनी सारी कट्टरता खत्म करके हिन्दू निराश्रितों को फिर से बसाने के प्रयत्न में लगे हुये दिखाई देने लगते हैं, गाँधी जब बिहार के गाँवों में घूमते हैं तो बिहारी हिन्दुओं में इतनी क्षमता और सहिष्णुता आ जाती है कि वे पंजाब की समस्त बर्बरता और पाशविकता की प्रतिक्रिया को, भगवान् शिव के गरल-पान के समान, आत्मसात् कर लेते हैं और जब कलकत्ते में समस्त मानवीय प्रयत्नों के बावजूद हिन्दू सिक्ख और मुसलमान पागल बन जाते हैं तब गाँधी का एक इशारा उन्हें शान्त करने में समर्थ होता है। देश में आज जो हम साम्प्रदायिकता पाते हैं वह सचमुच ही इतनी तीव्र है और उसका विष हमारे जीवन में इतना

गहरा चला गया है कि यदि गाँधी जी हमारे बीच में न हों तो वह अपनी लपटों में हमारे भविष्य के सभी स्वप्नों को जलाकर भस्म कर सकती है। आज यदि हम अपने देश के लिये किसी अच्छे भविष्य की आशा कर सकते हैं तो वह इसीलिये कि गाँधी के शक्तिशाली व्यक्तित्व पर हमें भरोसा है। हमें यह विश्वास है कि जिस महान् व्यक्ति ने हमें अपनी खोई हुई आजादी को फिर से प्राप्त करने में सफल बनाया है वही व्यक्ति, और केवल वही व्यक्ति, इतना समर्थ है कि वह स्वयं आसपास के वतावरण से निर्लिप्ति, विकार-शून्य और सर्वथा ऊपर रह कर, एक गौरवशाली भविष्य की ओर हमें ले जा सकेगा।

इस महान् व्यक्ति की, दुनियाँ के इस बड़े पैगम्बर की अठहत्तरवीं वर्षगाँठ हम आज मनाने जा रहे हैं और यह एक गौरव की बात है कि एक आजाद हिन्दुस्तान में हम इसे मना रहे हैं। ईश्वर हमें आशीर्वाद दे कि अभी सैतालीस और वर्षगाँठें मनाने का हमें अवसर मिले, लेकिन यदि हम अपने इस राष्ट्रपिता को सवासौ वर्ष की आयु तक अपने बीच रखना चाहते हैं तो हमें अपने आपको और अपने राष्ट्र को इस महान् गौरव के लिये एक योग्य पात्र बना लेना होगा। अन्य प्रमुख व्यक्तियों की वर्षगाँठ पर हम यह प्रतिज्ञा कर सकते हैं कि हम अपने जीवन को भी वैसा ही महान् बना लेंगे, पर गाँधी तो बर्फ से ढकी हुई गौरीशंकर की उस चोटी के समान हैं जिसे हम दूर से देख तो पाते हैं पर जिसके चरणों का स्पर्श करने की पात्रता भी हम अपने में नहीं पाते हैं। हममें से किसी के लिये भी गाँधी बनना तो सम्भव नहीं है, लेकिन गाँधी के बनाये हुये रास्ते पर हम चल जरूर सकते हैं। गाँधी का बताया हुआ रास्ता—जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, जीवन के एक महान् संतुलन का रास्ता है। जीवन के संतुलन (balance) को पाने की दिशा में ही गाँधी के सारे प्रयत्न रहे हैं।। गाँधी को हम न तो भावना के प्रवाह में बहते हुये पाते हैं और न भावना से बचकर केवल बौद्धिकता के एक शुष्क शिखर के रूप में ही

हम उन्हें देखते हैं। गाँधी से अधिक भावुक व्यक्ति की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। मनुष्य मात्र के दुख से किसी का हृदय हिल उठ सकता है तो वह गाँधी का हृदय है, पर अपनी भावनाओं पर उनसे अधिक नियंत्रण की कल्पना भी हम किसी और में नहीं कर सकते। गाँधी जी ने एक बार कहा था—"यह बात नहीं है कि मेरी अँगुलियाँ कभी झुलसी नहीं हैं, पर मैं सदा उन पर गरजता रहता हूँ" अपने मन, वचन और कर्म के प्रत्येक हल्के से उद्वंलन के प्रति भी गाँधी जी सदैव सतर्क और जागरूक रहते हैं। यही सतर्कता और जागरूकता तो गाँधी की महानता का आधार है। ज्ञान और कर्म के, भावना और विवेक के, मन, वचन और कर्म के इस अद्भुत संतुलन ने ही गाँधी को महान् बनाया है। अपने व्यक्तित्व में जीवन की सभी शक्तियों को एक सुन्दर समन्वय से संश्लिष्ट कर देने का ही यह परिणाम है कि गाँधी जी बाह्य जीवन में सर्वोदय के पक्ष में हैं। आन्तरिक जीवन में संतुलन और बाहरी जीवन में एक सर्वतोमुखी क्रान्ति के वे विधायक और स्रष्टा हैं। ईश्वर हममें से प्रत्येक को बुद्धि और बल दे कि हम उनके द्वारा आयोजित विश्व के इस महान् पुनर्निर्माण में मानव-संस्कृति के इस गौरव-शाली नव-सृजन में, अपना विनम्र योग दे सकें।

गाँधी जी तथा हरिजन

श्री अ० वि० ठक्कर

गाँधी जी तथा हरिजन

श्री अ० वि० ठक्कर

हरिजन-कार्य के सम्बन्ध में गाँधी जी ने आज तक क्या-क्या किया है इसकी गणना करना कठिन है। इस कार्य में मेरा तथा उनका सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ रहा है। इस छोटे से लेख में उसी पुनीत संबंध का संक्षिप्त दिग्दर्शन करा देता हूँ।

गाँधी जी ने प्रायः कहा है कि मेरे भाग्य में यदि इस राजनीतिक कार्य का भार न आया होता तो मैं हरिजनों एवं पीड़ित जनों की सेवा ही निरन्तर करता रहता।

सन् १९१४ में जब गाँधी जी दक्षिण अफ्रिका से हिन्दुस्तान में रहने के लिए वापस आये तभी से इसी सेवा-कार्य के संबंध में और दुष्काल निवारण जैसे दूसरे कार्यों के संबंध में मेरा तथा उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया।

सन् १९१६–१७ की बात है। तब साबरमती-आश्रम भवन नहीं बना था। उसकी स्थापना उन्होंने अहमदाबाद के पास कोचरब नामक एक गाँव में एक मामूली कोठी में की थी। वही विश्वविख्यात आश्रम का मूल रूप था। मैंने एक दिन वहाँ जाकर गाँधी जी से पूछा "मैं और श्रीमती अनुसूया बहन वाधरी लोगों के बच्चों की एक पाठशाला चला रहे हैं। क्या मैं उस शाला के तीस चालीस बच्चों को आपका दर्शन कराने के लिए ले आऊँ।" वाधरी लोग गुजरात में 'अस्पृश्य' जाति के तो नहीं समझे जाते हैं पर बहुत गन्दे रहते हैं और लगभग अस्पृश्यों की तरह ही उनका तिरस्कार होता है। हिन्दुओं की अत्यंत पिछड़ी जातियों में

से यह एक जाति है। गाँधी जी ने उत्तर दिया "जरूर उनको मेरे पास ले आओ। उन्हें पूड़ी साग खिलाने का भी मैं आश्रम में प्रबन्ध करूँगा।" मैं उन बच्चों को आश्रम में अपने साथ ले गया। गाँधी जी ने उन्हें साफ-सुथरे रहने के बारे में दो शब्द भी कहा परन्तु गाँधी जी ने अपने हाथ से उन बच्चों को बड़े प्रेम से पूड़ी-साग भी परोसा। वह चित्र आज भी मेरी आँखों के सामने वैसा ही नाच रहा है। ३० वर्ष के बाद भी उस प्रेम और सेवा के सुंदर चित्र को भूल नहीं सका।

सन् १९२० में उड़ीसा के पुरी जिले में भीषण बाढ़ आई थी। परिणाम स्वरूप अकाल पड़ा। गाँधी जी के पास वहाँ से माँग आई कि बम्बई की ओर से अकाल पीड़ितों को सहायता बाँटने के लिए अनुभवी कार्यकर्ताओं को भेजा जाये। गाँधी जी का "भारत-सेवक-समाज" के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध तो था ही। समाज के अध्यक्ष स्वर्गीय श्रीनिवास शास्त्रीजी को गाँधी जी ने एक पत्र लिखकर आग्रह-पूर्वक मेरी सेवा की माँग की। उत्तर में शास्त्रीजी ने लिखा "ठक्कर को तो मैं दक्षिण अमेरिका के अंतर्गत ब्रिटिश गियना में बसे हुए भारतीयों की अवस्था की जाँच करने के लिए भारत सरकार की ओर से भेजने वाला हूँ।" गाँधी जी ने तुरंत उत्तर दिया " वह काम तो साधारण सा है। उस काम के लिए आप और किसी को भेज सकें तो आपका काम चल सकता है। पर इस काम के लिए तो आप कृपा कर मुझे ठक्कर की ही सेवाएँ दीजिये, अकाल पीड़ितों में काम करने के लिए वही उपयुक्त होंगे।" गाँधी जी के नेतृत्व में मैंने यह काम १० मास तक स्वर्गीय श्री गोपबन्धुदास के साथ किया। इस काम में हरिजनों की अच्छी सेवा करने का सुअवसर मुझे मिला और अनुभव प्राप्त किया।

हरिजन-कार्य में गाँधी जी अपने सहचारियों से कितनी कड़ाई से काम लेते हैं। इसका एक उदाहरण नीचे देता हूँ।

गाँधी जी तथा हरिजन

साबरमती आश्रम में कई हरिजन कुटुम्ब रहते थे। उनमें से एक सज्जन बड़े हठी स्वभाव के थे और खादी के प्रमुख कार्यकर्ता भी। लक्ष्मीदास भाई को वह बहुत कष्ट और त्रास देते थे। गाँधी जी ने इस बारे में लक्ष्मीदास भाई को बड़े कड़े शब्दों में कहा "मेरी दृष्टि में वह पहला है और आप दूसरे नम्बर के हो। आप उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करो और उनकी माँग अनुचित हो तो भी पूरी करने का प्रयत्न करो।" यह सुनकर लक्ष्मीदास भाई और मैं चकित रह गये। चुपचाप हम लोग चले गये।

सन् १६३८–३६ की बात है। एक दिन मेरे मन में एक ऐसी तंरग आई कि मैं हरिजन कार्य छोड़कर अब अपना सारा समय तथा शक्ति वनवासी लोगों के सेवा कार्य में लगा दूँ क्योंकि हरिजन कार्य करने वाले तो बहुत से पैदा हो गये हैं और उस कार्य की व्यवस्था भी ठीक तरह से चल रही है। परन्तु वनवासियों के सेवा-कार्य के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है और वह लोग हरिजनों से अधिक पिछड़े हुए हैं। इस बात की चर्चा जब मैंने गाँधी जी से की तब उन्होंने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया "ठक्कर तुम्हारा ऐसा कहना ठीक है परन्तु हम लोग हरिजनों की सेवा करते हैं वह अपने तथा अपने पूर्वजों के किये पापों को धोने के लिए करते हैं। यह हमें भूलना नहीं चाहिए। इस प्रायश्चित्त कार्य को तो तुम छोड़ ही नहीं सकते। वनवासियों की सेवा भी हरिजनों की सेवा करते करते तुम्हें समय हो तो करते रहो, पर हरिजन सेवा छोड़ने की बात पर मैं तुम से कभी सहमत नहीं हो सकता हूँ।" उस दिन से मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं मरणपर्यंत इस कार्य को नहीं छोड़ सकता। दिल्ली के हरिजन-सेवक-संघ के दफ्तर में बैठे-बैठे मैं वनवासियों का सेवा-कार्य भी साथ-साथ करता रहूँगा।

जब जब गाँधी जी प्रवास पर जाते हैं तब स्टेशनों पर तथा जलसों और प्रार्थना-सभाओं में हरिजन कार्य के लिए पैसे पाई का दान माँगने

में कभी नहीं चूकते हैं। उनके साथी उन्हें उसी काम में मदद देते हैं और इसी नियम से प्रतिवर्ष हजारों रुपये एकत्र कर मेरे पास उसका उपयोग करने के अर्थ भेजते रहते हैं।

सन् १६३४ में गाँधी जी ने ६ मास का निरन्तर हरिजन प्रवास किया था। उसमें एक दिन उड़ीसा प्रान्त के अंगुल गाँव में जब पहुँचे तब मैंने ऐसा दृश्य देखा कि चकित रह गया। आस-पास से आये हुए सैकड़ों वनवासी लोग गाँधी जी के दर्शन के लिए उत्सुक तो थे ही, साथ ही अपने घरों से चिथडों में गाँठ बांधकर एक एक पैसा भी लाये थे। उनके हाथ में पैसे देने के लिए अत्यन्त अधीर हो रहे थे। आज तो एक पैसे की कीमत कुछ भी नहीं है पर सन् १६३४ में तो उसकी कीमत आज से चार गुनी थी। गाँधी जी अपना और काम काज छोड़कर यहाँ तक कि टट्टी भी न जाकर, एक मंच पर चढ़ गये और वहाँ से बैठे बैठे अपना हाथ लम्बा कर नीचे खड़े वनवासियों से दो घंटे तक एक एक पैसा लेते रहे और इस प्रकार कई रुपये हरिजन सेवा के लिए इकट्ठा कर लिए। उन्होंने मुझ से कहा कि शहरों से जो मैं सैकड़ों हजारों रुपये इकट्ठे करता हूँ उससे कहीं अधिक संतोष इस एक एक पैसे इकट्ठा करने में मुझे हुआ है। यह गरीबों की भेंट तो सुदामा के तन्दुलों जैसी है। प्रेम के तन्दुलों की इस भेंट को स्वीकार किए बिना मैं कैसे रह सकता था।

डा० अम्बेडकर ने अपनी पिछली पुस्तक (What Gandhi and Congress have done to the Untouchabl s)—गाँधी और कांग्रेस ने हरिजनों का क्या किया है?) में अनेक प्रकार के कटु और असत्य आक्षेप गाँधी जी पर किये हैं। किन्तु उन सब को भूलकर १६४७ की केन्द्रीय सरकार में डा० अम्बेडकर को मंत्री बनाने की सम्मति भी गाँधी जी ने ही दी है। यह बात तो अभी ताजी ही है। और सब को मालूम है। गुजराती में एक कहावत है जिसका अर्थ है कि बच्चे नादान हो सकते हैं पर माता या पिता नादानी नहीं किया करते।

गाँधी और हिन्दी वाङ्मय

श्री सुधीन्द्र

गाँधी और हिन्दी वाङ्मय

श्री सुधीन्द्र

महामानव गाँधी एक युग-पुरुष हैं। उनके मन, वचन और कर्म में युग निर्देश और युग-संचालन की शक्तियाँ निहित हैं। उन्होंने अपने व्यवसाय के प्रसंग से विदेशी अनाचार और पीड़न को पहचाना और विरोधी बने। अफ्रीका में वे समाज-सेवक और राजनेता बने और भारत-पुत्र होने के नाते भारत में वे प्रसिद्ध और प्रशंसित हुए। भारतीय-राजनीति के आकाश के क्षितिज के अञ्चल में उदय होते ही इस सूर्य ने अपनी आभा से दिग्दिगन्त को आलोकित कर दिया। अनेक जन-आन्दोलनों के वे सूत्रधार बने। उनके नेतृत्व में राष्ट्र ने अनेक संघर्षों और संग्रामों में जूझकर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की। 'असहयोग' और 'सत्याग्रह' की अपनी अहिंसक रण-नीतियों से गाँधी ने मानव-जाति के इतिहास में एक अभूतपूर्व सृष्टि की। गाँधी का समग्र जीवन-दर्शन अहिंसा (केन्द्र) के चारों ओर सत्य (वृत्त) की परिधि से घिरा हुआ है। उनके जीवन के समस्त व्यापार और विधान, कर्म और कार्य-कलाप इसी केन्द्र से अनवच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं। गाँधी ने व्यक्ति की अहिंसा को समाज और राष्ट्र की अहिंसा के रूप में परिणत करके दिखाया है। अपनी मानववादी भाव-धारा और विचार-सरणी से गाँधी ने

जन-मन और जन-जीवन को प्रभावित, प्रेरित, अनुप्राणित और संचालित किया है। उनकी चिन्ता और उनका दर्शन उनके लघु से लघु और महान् से महान् व्यष्टिगत और समष्टिगत क्रिया-कलाप में प्रस्फुटित हुआ है। पिछली चौथाई शताब्दी का भारतीय इतिहास गाँधी के कुशल अधिनायकत्व में लड़ी हुई स्वतन्त्रता की लड़ाइयों का इतिहास है। आज का भारत-राष्ट्र तो गाँधी की ही सृष्टि है। ऐसे महान् राष्ट्रपिता के प्रभाव से राष्ट्र के जीवन का कोई कोना अछूता कैसे रह सकता था? **सामाजिक** क्षेत्र में अछूतोद्धार और स्त्री-उत्थान, **आर्थिक** क्षेत्र में खादी, स्वदेशी और ग्रामोद्योग। **नैतिक** क्षेत्र में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदि की प्रतिष्ठा, **राजनीतिक** क्षेत्र में 'असहयोग' और सत्याग्रह गाँधी की युगान्तरकारी और युगनिर्माण-कारी कृतियाँ हैं—जीवन के सभी क्षेत्रों में गाँधी पूर्णतया प्रविष्ट हैं, उनका प्रभाव भारतीय जीवन पर सर्वतोमुख और सर्वांगीण है। जीवन के संचित ज्ञान की निधि और अभिव्यक्ति 'साहित्य' पर भी उनका अमिट प्रभाव इतना पड़ा है कि हम पिछली चौथाई शताब्दी के भारतीय साहित्य को **'गाँधी-युग का साहित्य'** कह सकते हैं। देश-विदेश के महाप्राण व्यक्तियों के विचारों को भी गाँधी ने प्रभावित किया है और उनकी श्रद्धा जीत ली है। विश्व के महान् साहित्यकार रोमाँ रोलाँ ने गाँधी की जीवन-कथा लिखकर उन्हें श्रद्धाञ्जलि भेंट की है। पर्ल बक, योन नागुची, डी मेडिं्रयागा, जोड़, मरे, जिमर्न, अप्टन सिंक्लेयर, कॉम्पटन, स्मट्स जैसे महती साहित्यिक दार्शनिक और राजनीतिक व्यक्तियों ने गाँधी का स्तवन किया है। भारत के विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपने कार्य में गाँधी से प्रेरणा पाई थी। स्व० रवीन्द्रनाथ ने 'गाँधी महाराज को अपनी श्रद्धा की अंजलि एक छोटी कविता में चढ़ाई है:

गाँधि महाराजेर शिष्य
केउ वा धनी केउ वा निःस्व,
एक जायगाय आछे मोदेर मिल;

गरिब मेरे भराइ ने पेट,
धनीर काछे हइ ने तो हेंट,
आतंके मुख हय ना कभु नील।

: २ :

षण्डा जखन आसे तेड़े,
ऊँचिये घुषि डाँडा नेड़े
आमार हेसे बोलि 'जोयानटाके
ए जे तोमार चोख-राँगानो,
खोका बाबूर घुम-भांगानो,
भय ना पेले भय देखाब काके?

: ३ :

सिधे भाषाय बलि कथा
स्वच्छ ताहार सरलता,
डिप्लमैसिर नाइ को असुविधे:
गारद खानार आइनटाके
खूँजते हय ना कथार पाके,
जेलेर द्वारे जाय से निये सिधे।

: ४ :

दले दले हारन, बाड़ि
चलल जारा गृह छाड़ि,
घूचल तादेर अपमानेर शाप,

चिर कालेर हातकड़ि जे,
धूलाय खसे पड़ल निजे
लागल भाले गाँधी राजेर छाप !

इस लघुप्रशस्ति की छाया इस प्रकार होगी :

गाँधी महाराज के अनुचर
कई धनी हैं कई दीन, पर
एक बात ऐसी है जिसमें मिल होते हम सभी अभिन्न
मार दीन को पेट न भरते,
धनिक-चरण पर माथ न धरते,
आतंकों को देख कभी हम होते हैं भयभीत न खिन्न ।

: २ :

चढ़ आते जब संड-मुसंडे,
घूँसे दिखा घुमाकर डंडे
हम सब तब केवल मुसकाकर कहते उनसे यही विनीत-
लाल तुम्हारे देख विलोचन
चौंक उठें सोते बालक गण
हम निडरों को कर पायेंगे पर क्या वे पलभर भयभीत ?

: ३ :

बात सरल सीधी कहते हम
भाषा जिसकी शुद्ध स्वच्छतम
कभी न होते दाव-पेंच या कूटनीति के कारोबार,
कानूनों में कर कर उलझन
डाल डाल देते वे बन्धन
बड़ी सरलता से ले जाते सीधे हमें जेल के द्वार ।

गाँधी और हिन्दी वाङ्मय

: ४ :

दल के दल हम जब घर तजकर
आ जुड़ते हैं जेल-मार्ग पर
धुल जाता है तब पल भर में अपमानों का सब अभिशाप
युग-युग की हथकड़ी खिसक कर
गिर जाती है धरा-धूल पर
लग जाती आकर ललाट पर गाँधी महाराज की छाप !

अनुवादक : सुधीन्द्र

बंगभाषा ही नहीं देश की गुजराती, मराठी जैसी उत्तरापथ की भाषाओं से लेकर दक्षिणापथ की द्रविड़ भाषाओं पर भी गाँधी का महान् प्रभाव पड़ा है। इस लेख का उद्देश्य राष्ट्रभाषा हिन्दी के वाङ्मय पर पड़े हुए गाँधी के प्रभाव का आकलन है।

गाँधी के जीवन-दर्शन के प्रमुख अंगों का अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है :—

गाँधी जी का जीवन-दर्शन जो सत्य और अहिंसा पर केन्द्रित है और जीवन के विविध अंगों में व्यापक है : इस प्रकार देखा जा सकता है। व्यक्ति के नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक जगत् में वह सत्य, अहिंसा, मानववाद, सर्वधर्मसमभाव आदि के रूप में प्रकट हुआ है, सामाजिक क्षेत्र में अछूतोद्धार, स्त्री-उद्धार, ग्रामोद्धार आदि प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट हुआ है, राजनीतिक क्षेत्र में वह असहयोग, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह के रूप में प्रकट हुआ है और आर्थिक क्षेत्र में ग्रामोद्योग और खादी आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुआ है, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वही विश्व-बन्धुत्व वाद है। सत्य और अहिंसा के इस जीवन-व्यापी दर्शन को इस प्रकार अच्छी तरह समझा जा सकता है :

अहिंसा

गाँधी ईसा, महावीर और बुद्ध की अहिंसा के अवतार हैं। जीवन का समग्र दर्शन गाँधी ने अहिंसा की भित्ति पर प्रतिष्ठित किया है। सामाजिक जीवन में वह अस्पृश्यता-निवारण, स्त्री-उद्धार आदि के रूप में, आर्थिक जीवन में स्वदेशी, खादी और ग्रामोद्योग के रूप में, नैतिक जीवन में सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, निर्भयता के रूप में, धार्मिक जीवन में सर्वधर्म-समभाव या मानव-धर्म के रूप में और राजनीतिक जीवन में निष्क्रिय प्रतिरोध, सविनय आज्ञा-भंग, असहयोग और सत्याग्रह के रूप में व्यक्त हुआ है। वैयक्तिक और सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में गाँधी जी ने अहिंसा को मानव-प्रेम के रूप में जीवन का मंत्र बनाने का पदार्थ-पाठ दिया है। गाँधी के अहिंसा-शास्त्र में शत्रु का नाम नहीं है। व्यावहारिकता के लिए 'विपक्षी' शब्द स्वीकार किया गया है। विपक्षी से घृणा नहीं, प्रेम, उसके प्रति सक्रिय नहीं, निष्क्रिय प्रतिरोध, उस पर बल-प्रयोग नहीं त्याग, कष्ट सहन और आवश्यक हो तो प्राणोत्सर्ग द्वारा भी उसका हृदय-परिवर्तन---यह अहिंसा का गाँधी-दर्शन बना। गाँधी की अहिंसा इस प्रकार युग की आवश्यकता के अनुरूप ईसा, महावीर और बुद्ध की अहिंसा की भाँति एकांगी नहीं सर्वांगीय है। गुजरात के कलाकार कनु देसाई ने एक चित्र में गाँधी को बुद्ध का प्रतिरूप चित्रित किया है—गाँधी वस्तुतः **अभिनव अमिताभ** हैं।

राजनीति में रक्त-पान के बदले रक्त-दान, सशस्त्र विद्रोह के बदले अहिंसक सत्याग्रह ; युद्ध-नीति के साधक स्वीकृत हुए कारागार कृष्ण-मन्दिर बने और सत्याग्रही उसके पुजारी; भारत-राष्ट्र की स्वतन्त्रता का युद्ध अहिंसात्मक संघर्ष हुआ। गाँधी की अहिंसा 'सत्य' का साधन है। उनकी राजनीति भी उनके मुक्ति-मार्ग की एक मंजिल है। तुलसी और

कबीर, तुकाराम और नरसी, रस्किन और टॉल्स्टॉय गाँधी के जीवन के पथ-प्रदर्शक थे। भूतहितवाद और मानववाद की आधार-भूमि पर उन्होंने अपने अहिंसक रामराज्य और 'सर्वोदयवाद' का विकास किया, जिसमें सब वर्णों, जातियों और वर्गों का सामूहिक उत्थान निहित है। संसार को यह नवीन संदेश देकर गाँधी विश्वविभूति और महामानव बने। कर्मवीर और कर्मयोगी से महात्मा और सन्त पद उन्होंने अर्जित किया। भारतराष्ट्र ने तो उन्हीं के अंगुलि-निर्देश पर मार्ग बनाया है। साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब और जीवन की व्याख्या है अतः उसका समग्र रूप साहित्य में दिखाई देना स्वाभाविक और अनिवार्य था।

सत्य

सत्य और अहिंसा गाँधी के दो श्वास-यन्त्र हैं। उनकी समस्त नैतिक-धार्मिक, सामाजिक-राजनीतिक चिन्ता-धारा इन्हीं दो स्रोतों से निसृत हुई है। गाँधी के भारतीय जीवन में पदार्पण करने के साथ ही 'सत्य' और 'सत्याग्रह' के मंत्र वातावरण में गूँजने लगे। हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि-निर्माता कवि ने सत्य को इस प्रकार प्रशस्ति दी है :

सत्य सृष्टि का सार, सत्य निर्बल का बल है।
सत्य सत्य है, सत्य नित्य है, अचल अटल है।
जीवन-सर में सरस मित्रवर यही कमल है।
मोद मधुर मकरन्द सुयश सौरभ निर्मल है।

मन-मलिंद मुनिवृन्द के मचल मचल इस पर गये।
प्राण गये तो इसी पर न्योछावर होकर गये॥

× × ×

सत्यरूप हे नाथ ! तुम्हारी शरण रहूँगा,
जो व्रत है ले लिया लिये आमरण रहूँगा,
ग्रहण किये मैं सदा आपके चरण रहूँगा,
भीत किसी से और न हे भयहरण ! रहूँगा;
पहली मंजिल मौत है प्रेम-पन्थ है दूर का,
सुनता हूँ मत था यही सूली पर मंसूर का !

—गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

सत्य एक शाश्वत वृत्ति और शील है, परंतु उसे नैतिक, सामाजिक जीवन में ही नहीं, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में चरितार्थ करने का पदार्थ-पाठ और प्रेरणा महात्मा गाँधी ने ही दी है। उनका 'सत्याग्रह, विश्व की रण-नीति में एक युगान्तर है। सत्य के प्रति जो प्रशस्ति कवि ने दी है, वह वस्तुतः सत्याग्रह के प्रति कवि की श्रद्धा भावना के कारण है।

मानववाद

१९१४-१५ से भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर गाँधी नक्षत्र का उदय हुआ और उसने कुछ ही वर्षों में अपने वाणी, विचार और आचार से भारतीय जीवन को आच्छादित कर लिया। गाँधी केवल राजनीति में ही नये दर्शन के मन्त्रदाता नहीं हुए, वरन् समाजनीति और आध्यात्मिक जगत् में भी द्रष्टा बने। वे सर्वांग-सम्पूर्ण जीवन के विधाता हुए। महात्मा गाँधी के मानववाद ने, वैष्णव भक्ति में ही जन्म पाया है। गुजरात के कवि-वरेण्य नरसी महता का प्रसिद्ध भजन।

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोय मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोकमाँ सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे।

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन नव झाले हाथ रे।
मोह-माया व्यापे नहिं जेने दृढ़ वैराग्य जेना मन माँ रे;
रामनाम शुं ताली लागी सकल तीरथ तेना तन माँ रे।
वण लोभी ने कपट रहित छे काम क्रोध निवार्या रे।
भणे 'नरसैयो' तेनुं दरसन करताँ, कुळ एकोतेर तार्या रे।

गाँधी के सच्चे मानव के आदर्श को व्यक्त करता है और वह गाँधी का प्रिय गीत है। नरसी के उक्त गीत में आदर्श भक्त के गुण इस प्रकार हैं: परदुःखकातरता, परोपकार, निरभिमानता, विनयशीलता, अनिन्दा, मन, वचन, कर्म का संयम, समदर्शिता, तृष्णा-त्याग, ब्रह्मचर्य, सत्य-भाषण, अचौर्य, निर्मोह, वैराग्य, निर्लोभ, निष्कपटता, अक्रोध, अकाम और राम-स्मरण। गाँधी ने इन्हीं गुणों को अपने आश्रमवासी के 'एकादश व्रत' में अधिष्ठित कर दिया है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन।
सर्व-धर्म समानत्व, स्वदेशी, स्पर्शभावना।
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रतनिश्चये।

सामाजिक और राजनैतिक, नैतिक और धार्मिक जीवन में इन्हीं व्रतों का आचरण गाँधी चाहते हैं। उनकी विविध प्रवृत्तियाँ भी इन्हीं मानव-वृत्तियों से प्रेरित और अनुप्राणित हैं।

गाँधी के मानववाद में मानव को समदर्शी होना ही अंगीकृत है; गीता के अनुसार वह ब्राह्मण, गो, हाथी, श्वान और चाण्डाल में अभेद-भावन करने वाला होना चाहिए[1]। अन्त्यज, अछूत, पंचमाँग, शूद्र आदि कहे जाने वाले समाज

अछूतोद्धार आन्दोलन

---

१ विद्या-विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (गीताः ५—१८)

के अंग को गाँधी ने उठाकर मानव-कोटि में लाने का महान् प्रयत्न किया। गाँधी की इस मानवीय भावना ने कवि-हृदय को सबसे अधिक प्रभावित किया है। 'वियोगीहरि' ने अपनी 'वीर-सतसई' में गाँधी की इस प्रवृत्ति को प्रशस्ति दी है :

जिन पायनु तें जान्हवी भई प्रगटि जग-पूत।
तिनहीं ते प्रगटे न ये तुम्हरे अनुज-अछूत।
सुरसरि औ अंत्यज दुहूँ अच्युत-पद-सम्भूत।
भयौ एक क्यों छूत औ दूजो रह्यौ अछूत?
महा असिव हूँ सिव भयौ जाहि सीस पै धारि।
छुअत न तासु सहोदरनि रे द्विज, कहा विचारि?[1]

ब्रजभाषा के एक दूसरे आधुनिक कवि (दुलारेलाल) ने भी हरिजनोद्धार का धर्म प्रचारित किया है :

हरिजन तैं चाहौ भजन तौ हरि-भजन फजूल;
जन द्वारा ही करत हैं राजन मिलन कबूल।
छुआछूत नागिन डसी परी जु जाति अचेत।
देत मंत्रना मंत्र तैं गाँधी गारुड़ि चेत।
जे जुग जुग बिछुरे रहें हम तें हरिजन-लोग।
गाँधी जोगी जोग किय छन ही जुगल सँजोग[2]।

गाँधी पर एक बार प्रतिक्रियावादी हिन्दुओं ने पूना में बम भी फेंका था। इस घटना को भी कवि ने आलेखित किया—

बमचख मची कि बम दियो गाँधी ओर चलाय।
पै दृढ़ छूआछूत-गढ़ ढहन चहत अरराय।

---

१ वीर सतसई: ६: ८१, ८२ और ८४,

२ दुलारे 'दोहावाली'

समाज के इस छुआछूत के रोग को हिन्दी कवियों ने प्रायः अपनी सामाजिक कविता का विषय बनाया है। कई कवियों ने लघु पद्यकथाओं में समाज की इस निर्मम यथार्थता को चित्रित किया है। सियारामशरण गुप्त ने 'एक फूल की चाह' कविता में इसी विषय को लेकर अतिकरुण वातावरण की सृष्टि की है। एक अछूत बालिका रोगशय्या पर पड़ी हुई देवी के प्रसाद का एक फूल पाने की कामना करती है। बालिका की इच्छा उत्कट है, और उसका पिता जानता है कि वह ऐसा कर नहीं सकता। फिर भी बेटी की चाह पूरी करने के प्रयत्न में जाता है और राज-दंड का भागी होता है। इधर तो कन्या मृत्युशय्या पर अंतिम श्वास छोड़ती है—'मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर।' और उधर ७ दिन के कारावास से छूट कर जब तक पिता उसके पास पहुँचता है तब तक वह छोटा-सा फूल स्वयम् धूल बन जाता है।

अछूतोद्धार के मानवीय और सुधारवादी आन्दोलन को हिन्दी के कथाकारों ने अपनी शत-शत कहानियों और राशि-राशि उपन्यासों में प्रतिध्वनित और प्रतिबिम्बित किया है। प्रेमचंद की अनेक कहानियाँ और उपन्यास, मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य 'साकेत' इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

स्त्री-उत्थान

भारतीय स्त्री अंत्यज-अछूत की ही भाँति दूसरा दलित-पीड़ित प्राणी थी। समाज ने उसे सदैव बन्धनों में जकड़ा है, हिन्दू घरों में स्त्री गृहस्वामिनी के आवरण में गृह-दासी है, बन्धनों से वह घिरी हुई है और ज्वलन्त पौरुष और प्रतिभा की जन्मदायिनी होकर भी वह 'अबला' है—गाँधी स्वयम् यौवन की अहम्मन्यता में एक बार दक्षिण अफ्रीका प्रवास में अपनी सहधर्मिणी कस्तूरबा को अपने घर से निकालने का अनाचार कर रहे थे, परन्तु कस्तूरबा ने उनको उद्बुद्ध किया। गाँधी तब से नारी के उत्थान में सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। स्वदेश में आकर जब उन्होंने जन-आन्दोलनों

की बागडोर सँभाली तो पर्दे और पराधीनता से नारी ने जनपथ पर आकर पुरुष के साथ चलकर सहचारिणी और सहगामिनी बनकर दिखाया। गाँधी का ही प्रताप था कि 'अबला' ब्रह्माण्ड को विकंपित कर देने वाले पौरुष का प्रदर्शन कर सकी और अपनी एक प्रतिनिधि कवयित्री (सुभद्रा कुमारी चौहान) के मुँह से यों हुँकार उठा सकी :

सबल पुरुष यदि भीरु बनें तो हमको दे वरदान सखी।
अबलाएँ उठ पड़ें देश में करें युद्ध घमसान सखी!
पन्द्रह कोटि असहयोगिनियाँ दहलादें ब्रह्माण्ड सखी!
भारत-लक्ष्मी लौटाने को रच दें लंका-काण्ड सखी![1]

राष्ट्र के सत्याग्रह-आन्दोलनों में महिलाओं ने अभूतपूर्व उत्साह से भाग लिया है। प्रेमचन्द जी ने अपने कथा-साहित्य में नारी-जाति के सामाजिक-राजनीतिक जागरण का आभास दिया है। 'समरयात्रा' कहानी में गाँव की बुढ़िया नोहरी सत्याग्रहियों की टोली में बड़े प्राण-पण से कूद पड़ती है। शराब की दूकानों पर, विदेशी कपड़े की दूकानों पर इनके विक्रय के विरुद्ध, गाँधी की इच्छानुसार, धरना देने वाली फौज तो महिलाओं की ही होती थी। 'शराब की दूकान' कहानी में मिसेज जी पी सकसेना 'शरीफ घरानों' में जा-जाकर स्वदेशी और खद्दर का प्रचार करती थीं। जब कभी कांग्रेस प्लेटफार्म पर बोलने खड़ी होतीं, उनका जोश देखकर ऐसा मालूम होता था, आकाश में उड़ जाना चाहती हैं।'[2] इस कहानी में मिसेज सकसेना ने बड़ी वीरता पूर्वक शराब की दूकान पर धरना दिया है। अन्य लेखकों ने भी अपनी कृतियों में यत्र-तत्र प्रेमचन्द के पथ का अनुसरण किया है।

गाँधी की दृष्टि में नारी शील और सद्‌गुणों की मूर्ति होनी चाहिए और गाँधी-युग के लेखकों और कवियों ने अपनी आदर्शवादी कृतियों में

---

१ 'विजया दशमी': सुभद्राकुमारी चौहान

२ 'शराब की दूकान' प्रेमचन्द

ऐसी नारी को ही प्रतिष्ठित किया है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्रकुमार, सोहनलाल द्विवेदी और सियारामशरण, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त ने नारी का आदर्श रूप ही ग्रहण किया है। सियारामशरण गुप्त के 'उन्मुक्त' में मृदुला सेवाभाविनी नारी है और राष्ट्र-सेवा में अग्रणी है। 'प्रसाद' के 'चन्द्रगुप्त' की अलका भी भारत की जाग्रत नारी के देशसेविका-रूप की मूर्ति है। उनके 'कामायनी' महाकाव्य की नायिका श्रद्धा तकली कातने वाली महिला है—यह स्पष्टतः गाँधी-विचार धारा का प्रभाव है।

किसान

गाँधी के राजनीतिक मंच पर आते ही पहली बार किसानों की ओर समग्र राष्ट्र का ध्यान गया है और किसान दुर्बलता नहीं, वरन् एक शक्ति के रूप में पहचाना गया है। चम्पारण, खेड़ा बारडोली और बोरसद के आन्दोलन किसानों के ही बल के प्रतीक हैं। काँग्रेस का मध्यवर्गीय आन्दोलन जन-शक्ति को साथ लेकर चलने लगा और किसान, भारत के कृषि-प्रधान होने के कारण, भारतीय जनशक्ति का प्रतीक बन गया। राष्ट्रीय कवि सोहनलाल द्विवेदी की एक कविता में किसान को इसी शक्ति का उद्बोधन किया गया है :

ये रंग महल, ये मान-भवन, ये लीला गृह ये, गृह-उपवन,
ये क्रीडा-गृह, अन्तर-प्राँगण, रनिवास खास ये राज-सदन
ये उच्चशिखर पर ध्वज-निशान, ड्योढ़ी पर शहनाई सुतान,
पहरेदारों की खर कृपाण, ये आन-बान, ये सभी शान,
वह तेरी दौलत पर किसान! वह तेरी मेहनत पर किसान!
वह तेरी हिम्मत पर किसान! वह तेरी ताकत पर किसान।[1]

यही किसान जो शूरों-वीरों के बल-विक्रम में, योद्धाओं के शौर्य-वीर्य में, कलाकारों की काव्य-संगीत और साहित्य-साधना में, राजनीति, दर्शन,

---

१ 'किसान' (सोहनलाल द्विवेदी)

अर्थशास्त्र, इतिहास और ज्ञान-विज्ञान की प्रतिभा में, मन्दिर, मस्जिद, गिरजों के पुजारियों और मुल्ला और पादरियों की उपासना-आराधना में, 'जपतप व्रतपूजा, ज्ञान-ध्यान, रोजा नमाज वहदत, अजान' के कर्मकांड में अपनी दौलत, अपनी मेहनत, अपनी ताकत, अपनी हिम्मत अपनी रहमत, अपनी गफलत देकर अपने को भूल गया है, भारतमाता की आशाओं का सच्चा केन्द्र है :

> माँ ने तुझ पर आशा बाँधी, तू दे अपने बल की काँधी,
> ओ मलय-पवन बन जा आँधी, तुझ से ही गाँधी है गाँधी।[1]

उसके जागरण का यह आह्वान कितना प्राणोत्पादक है, : रोमाँचक है !

> यदि हिल उठ तू ओ शेषनाग ! हो ध्वस्त पलक में राज्य-भाग,
> सम्राट निहारें नींद त्याग, है कहीं मुकुट तो कहीं पाग,[1]

'किसान' की इससे उत्कृष्ट जय-प्रशस्ति किसी काव्य में नहीं मिलेगी।

ग्राम-सेवा और ग्रामोद्धार

ग्रामसेवा और ग्रामोद्धार गाँधी की अहिंसक समाज-रचना की प्रमुख प्रवृत्ति है। नगर की विषाक्त [illegible] सभ्यता में गाँधी ने महान् अकल्याण देखा था। ग्राम-संस्कृति और ग्राम-सभ्यता को ही गाँधी अहिंसक सभ्यता समझते हैं। ग्रामों के महादेश भारतवर्ष के ग्रामों की ओर सबसे पहले गाँधी ने ही राजनीतिज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने स्वयम् वर्धा को छोड़कर सेगाँव की ओर प्रयाण किया और उसे 'सेवाग्राम' बनाया। राष्ट्र में गाँधी के ग्रामसेवक आज बिखरे हुए हैं।

ग्राम के प्रति हिंन्दी कवियों की अतुलित श्रद्धा प्रवाहित हुई है। विद्यार्थि काल में पढ़ी हुई मैथिलीशरण की 'ग्रामजीवन' कविता तो भुलाये भी नहीं भूलती :

---

१ 'किसान' (सोहनलाल द्विवेदी)

१ अहा ! ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे ?
२ वह अदालती रोग नहीं है, अभियोगों का योग नहीं है।
मरे फौजदारी की नानी, दीवाना करती दीवानी।
३ यहाँ गठकटे चोर नहीं हैं, तरह तरह के शोर नहीं हैं।
गुंडों की न यहाँ बन आती, इज्जत नहीं किसी की जाती।
४. है जैसा गुण यहाँ हवा में, प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में।
संध्या समय गाँव के बाहर, होता नन्दन-विपिन निछावर।[1]

कवि गोपालशरण सिंह, बालमुकुन्द गुप्त, पाठक, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि अनेक कवियों ने विभिन्न ग्रामीण विभूतियों पर कवितायें लिखीं हैं। आधुनिक कवि सुमित्रानन्दन पन्त की प्रगतिशीलता ने भी ग्रामीणों के प्रति (बौद्धिक ही सही) सहानुभूति व्यक्त की है और 'ग्राम्या' की सृष्टि की है, जिसकी 'ग्रामकवि', 'ग्राम', 'ग्रामदृष्टि', 'ग्राम-चित्र', ग्राम-युवती' 'ग्रामनारी', 'गाँव के लड़के' 'धोबियों का नृत्य', 'ग्रामवधू', 'ग्रामश्री' 'चमारों का नाच', 'कहारों का रुद्रनृत्य' 'ग्रामदेवता' आदि आदि अनेक कविताओं में कवि ने ग्राम के शुक्ल और कृष्ण पक्षों को चित्रित किया है। दो-तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे—

(१) मिट्टी से भी मटमैले तन,
अधफटे, कुचैले, जीर्ण वसन—
ज्यों मिट्टी के हों बने हुए
ये गँवई लड़के-भू के धन !
कोई खंडित कोई कुंठित,
कृश बाहु, पसलियाँ रेखाँकित,
टहनी सी टाँगें, बढ़ा पेट।
टेढ़े मेढ़े विकलाँग घृणित ![2] (गाँव के लड़के)

---

१ ग्राम्य-जीवन (मैथिलीशरण गुप्त) २ 'ग्राम्या' (सुमित्रानन्दन पन्त)

(२) अररर......
मचा खूब हुल्लड़ हुड़दंग,
धमक धमा धम रहा मृदँग,
उछल-कूद, बकबाद झड़प में
खेल रही खुल हृदय उमँग
यह चमार चौदस का ढंग ![1] (चमारों का नाच)

(३) भारतमाता ग्रामवासिनी !
खेतों में फैला है श्यामल
धूलभरा मैला सा आँचल,
गंगा-यमुना में आँसू-जल,
मिट्टी की प्रतिमा-उदासिनी ![1] (भारतमाता)

कवि का हृदय ग्राम के प्रति अत्यन्त आर्द्र है। कवि सोहनलाल द्विवेदी के हृदय में भी ग्राम के प्रति अगाध ममत्व है :

(१) है अपना हिन्दुस्तान कहाँ वह बसा हमारे गाँवों में !
अपनी उन रूप कुमारी में जिनके नित रूखे रहें केश,
अपने उन राजकुमारों में जिनके चिथड़ों से सजे वेश
अंजन को तेल नहीं घर में कोरी आँखों के हावों में

*

है जिनके पास एक धोती है वही दरी उनकी चादर,
जिससे वे लाज समेट सदा निकला करतीं घर से बाहर,
पुर बधुओं का क्या हो शृँगार जो बिका रईसों-रावों में

*

---

१ ग्राम्या (पन्त)

सोने चाँदी का नाम न लो काँसे-फूले के कड़े-छड़े
मिला जायँ बहूरानी को, तो समझो उनके सौभाग्य बड़े।
राँगे की काली बिछियों में पति के सुहाग के भावों में,
है अपना हिन्दुस्तान कहाँ वह बसा हमारे गाँवों में![1]

कैलाशचन्द्र 'पीयूष' ने 'ग्राम-बाला' में ग्रामीण भूमिका में एक प्रेमकथा चित्रित की है। ग्राम-जीवन की पृष्ठभूमि में कथाकारों ने भी अपने कई उपन्यास और कथाएँ लिखी हैं जैसे प्रसाद की 'तितली' में ग्राम-संगठन की योजना है—सबसे पहले गाँवों में किसानों का एक बैंक और एक होमियोपैथी का निःशुल्क औषधालय खुलना चाहिए। एक प्रगतिशील पाठशाला भी होनी चाहिए। तीसरे दिन जहाँ गाँव का बाजार लगता है, वहाँ एक अच्छा सा देहाती बाजार हो, जिसमें कपड़े-कपड़े आदि मिल सकें। गृह-शिल्प को भी प्रोत्साहन दिया जाय। किसानों के खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े बदलकर उनका एक जगह चक बना दिया जाय जिसमें खेती की सुविधा हो। हिंदी के महान् उपन्यासकार स्व० प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' उपन्यासों की पृष्ठभूमि ग्राम ही चुनी है।

'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण हैं, जिसे पढ़कर जहाँ हृदय भर उठता है वहाँ उसे ध्वंस करने के लिए उग्र रोष भी जाग्रत होता है। भारतीय किसान का जीवन प्रेमचंद के इस उन्यास में मानो सहस्र जिह्वाओं से बोल उठा है। पुराने जमीदारी घरानों के द्वेष, फूट आदि के सच्चे और मार्मिक चित्र इसमें हैं। और ग्राम-जीवन की इस रुग्णता और रूढ़ि से मुक्ति दिलाने का एक मार्ग भी लेखक ने अन्त में दिखाया है। वह आशा भारतीय समाज में कहीं-कहीं चरितार्थ भी की जा रही है। 'प्रेमाश्रम' में एक आदर्श गाँव की झलक प्रेमचन्द ने प्रस्तुत की है।

---

१ सोहनलाल द्विवेदी (गाँवों में)

कलों और कारखानों वाला उद्योगवाद किस प्रकार ग्रामों का शोषण करता है, यह 'रंगभूमि' में चित्रित हुआ है। प्रेमचन्द के साहित्य में गाँधी की विचार धारा की प्रेरणा इतनी स्पष्ट है कि उनके कथा-साहित्य को गाँधीवादी कथा-साहित्य कहा जा सकता है। 'सेवा-सदन' में ग्राम के उदय का, प्रेमाश्रम को उसके मध्याह्न का और 'रंगभूमि' में उसके अस्त होने का दृश्य है। 'गोदान' तो ग्राम्य जीवन का नग्न चित्र है। ग्रामीण प्रकृति और ग्रामीण मनवता का ऐसा स्वाभाविक और विशद निदर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ पर 'प्रगतिवादी' कवियों, लेखकों और आलोचकों का उल्लेख करना आवश्यक है। ये साहित्यिक गाँवों को भारत में आर्थिक शोषण का प्रतीक अथवा शोषित समाज बताते हैं और उनके यथातथ्य चित्रण को अपना ध्येय मानते हैं। वस्तुतः वे कोई नई स्थापना नहीं करते। गाँधी ने इस युग युग व्यापी सर्वांगीण शोषण के विरुद्ध बहुत पहले आवाज उठाई थी, परन्तु वह राजनीतिक क्षेत्र में ही फैल कर रह गई थी। गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम गाँवों में ही फैले हैं, काँग्रेस ने भी गाँवों में अपने अधिवेशन करके इनकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है। क्या इस प्रगतिवादी विचार-धारा को गाँधी चिंतन ने गति नहीं दी है ? उसे अस्वीकार करना घोर अकृतज्ञता होगी।

अर्थ-तन्त्र

गाँधी के राम-राज्य में आर्थिक शोषण को कोई स्थान नहीं है। उनकी दृष्टि में आज की शोषक सभ्यता चाण्डाल सभ्यता[1] है। जब वे धनिकों को अपने धन को जनहितार्थ व्यय करने के लिए प्रेरित करते हैं तो रोग की चिकित्सा मात्र करते हैं और जब अपरिग्रह का पाठ पढ़ाते हैं तो रोग की ओर संकेत करते हैं। संसार में वर्ग-युद्ध का कारण एक की दीनता और दूसरे की सम्पन्नता है क्योंकि स्वर्ण ('अर्थ' का प्रतीक) एक वर्ग के पास

१ 'हिन्दस्वराज्य' (हिन्दी): १८३८ संस्करण: पृष्ठ ७४ से ६६

रहने पर ही अनर्थ का कारण बनता है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने राम-कथा काव्य साकेत में स्वर्ण की व्याख्या करते हुए स्वयं राम से कहलाया है—

हाँ, तब अनर्थ के बीज अर्थ बोता है।
जब एक वर्ग में मुष्टिबद्ध होता है।[1]

संग्रह त्याग के लिए होना चाहिए, अर्जन का लक्ष्य विसर्जन है, अन्यथा वह निन्दनीय है, स्वार्थी संग्रही चोर और डाकू है :

जो संग्रह करके त्याग नहीं करता है,
वह दस्यु लोक-धन लूट-लूट धरता है ![1]

समष्टि के लिए विसर्जित न करके भोग करने वाला गीता में स्तेन (चोर) कहा गया है—

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।[2]

इसीलिए गाँधी की दृष्टि में समष्टि के लिए उत्सर्ग ही सब वर्ग-युद्धों की रामबाण चिकित्सा है: 'हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।'[1] पूँजीवाद जब बढ़कर साम्राज्यवाद का रूप धारण कर लेता है तो पूँजीवाद को ही गिराना अनिवार्य होता है। जब कोई रावण अपनी सोने की लंका बनाकर पाशव शक्तियाँ जुटाकर आक्रमण (साम्राज्यवाद) की ओर अग्रसर हो तो उस सोने की लंका को ही भस्म होना चाहिए :

अब क्या है बस वीर बाण-से छूटो, छूटो,
सोने की उस शत्रु-पुरी लंका को लूटो।'[1]

१ 'साकेत' (मैथिलीशरण) : अमष्ट सर्ग।
२ गीता: ५—१२

परंतु गाँधी गुरु की पूतपावन वाणी उर्मिला में बोल उठती है—

नहीं नहीं, पापी का सोना, ।
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना ।[1]

गाँधी के अर्थशास्त्र में चरखा और खादी अहिंसक उद्योगवाद के प्रतीक हैं। चरखा (खादी) अर्थ-स्वावलम्बन का स्तम्भ और ग्रामोद्योगों का सूर्य है। उसका एक एक सूत्र जनता—शोषित-पीड़ित ग्रामीण जनता के श्वास से बँधा हुआ है। खादी के इस तत्त्व दर्शन को कविता यों कहेगी :

खादी और चरखा

खादी के धागे-धागे में अपनेपन का अभिमान भरा।
माता का इसमें मान भरा अन्यायी का अपमान भरा।
खादी के रेशे-रेशे में अपने भाई का प्यार भरा।
माँ-बहनों का सत्कार भरा, बच्चों का मृदुल दुलार भरा।
खादी में कितने ही दलितों के दग्ध हृदय की दाह छिपी।
कितनों की कसक-कराह छिपी, कितनों की आहत आह छिपी।
खादी में कितने ही नंगों-भिखमंगों की है आह छिपी।
कितनों की इसमें भूख छिपी, कितनों की इसमें प्यास छिपी।[2]

कवि पन्त ने भी बापू के जीवन-दर्शन में चरखे को मानवीय कला और कौशल का केन्द्र-बिन्दु माना है :

उर के चरखे में कात सूक्ष्म युग-युग का विषय-जनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन-जग को भर तुमने आत्मा का निनाद।

---

१ 'साकेत' : अध्याय १२

२ 'खादी-गीत' (सोहनलाल द्विवेदी)

रंग-रंग खद्दर के सूत्रों में नवजीवन आशा, स्पृहा, ह्लाद,
मानवी कला के सूत्रधार। हर दिया यन्त्र-कौशल प्रवाद।[1]

उसे उनकी युग-युग की नग्नता का आवरण 'संस्कृति' का प्रतीक माना है :

सदियों का दैन्य-तमिस्र तूम, धुन तुमने कात प्रकाश सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी, बुन नव संस्कृति मनुजत्व पूत।[2]

यंत्र-सभ्यता की विनाशक रुग्णता पर-चरखा ही राम-बाण औषधि है :

कहता चरखा प्रजातन्त्र से, 'मैं कामद हूँ सभी मंत्र से'।
कहता हँस आधुनिक यंत्र से,
'नम, नम 'नम' : भ्रम, भ्रम, भ्रम ![3]

जिसमें शोषण को स्थान नहीं है—गाँधी का समाज ऐसा ही अहिंसक समाज होगा। वहाँ कोई नग्न और क्षुधित न होगा। साकेत' (मैथिली-शरण गुप्त) में राम की महारानी सीता वनवास में कोल-किरात-भिल्ल बालाओं को स्वावलम्बन की ही दीक्षा देती हैं और श्रम की दीक्षा लेती हैं।

१. ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल-बालाओ,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आगई, आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
दो अहो! नव्यता और भव्यता पाओ।

२. तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में।[4]

---

१ 'बापू के प्रति' (सुमित्रानंदन पन्त)
२ 'बापू के प्रति' (सुमित्रानंदन पन्त)
३ 'चरखा गीत' (सुमित्रानंदन पन्त)
४ 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) : ८वाँ सर्ग

बीसवीं शताब्दी के हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ महान् काव्य 'कामायनी' की नायिका कामायनी श्रद्धा अपने पर्ण कुटीर में बैठी हुई गाती है और तकली चलाती है :

मैं बैठी गाती हूँ तकली के प्रतिवर्तन में स्वर विभोर—
'चल री तकली धीरे-धीरे प्रिय गये खेलने को अहेर
जीवन का कोमल तन्तु बढ़े तेरी ही मंजुलता समान;
चिर नग्न प्राण उनमें लिपटें सुन्दरता का कुछ बढ़े मान।
किरनों सी तू बुन दे उज्ज्वल मेरे मधु का जीवन-प्रभात;
जिसमें सौंदर्य-प्रकृति सरल ढँक ले प्रकाश से नवल गात।[1]

'प्रसाद' जी ने यहाँ तकली को सौंदर्य और प्रकाश का प्रतीक माना है'

खादी और चर्खा स्वदेशी धर्म के प्रतीक हैं। अर्थ-शास्त्र की भाषा में वे विकेंद्रित गृह-शिल्प और ग्रामोद्योग के प्रति-निधि हैं, परंतु भावना-प्रवण कवि उनमें नई-नई शक्तियाँ देखते हैं। गाँधी जी ने कहा है—खादी गरीबी का बाना है।

गरीब देश की जनता को गरीबों से समानुभूति और सहानुभूति के नाते भी खादी को प्यार करना चाहिए :

गरीबों ने ही बोया इसे, गरीबों ने ही इसे चुना;
गरीबों ने ही काटा इसे, गरीबों ने ही इसे धुना;
गरीबों ने ही काता इसे, गरीबों ने ही इसे बुना;
करेंगे हम गरीब फिर क्यों न इसी को प्यार हजार गुना ?[2]

कविवर सियारामशरण गुप्त ने भी एक अति सुंदर 'चर्खागीत' रचा है कवि श्री सुमित्रानन्दनपन्त ने भी।

---

१ 'कामायनी' (प्रसाद)

२ 'खादी' (सुधीन्द्र)

गाँधी के रामराज्य में, स्वराज्य में, राजा प्रजा का ट्रस्टी, संरक्षक, पोषक होगा, उत्पीड़क नहीं। राज्य तो प्रजा की थाती मात्र होगा। वह सर्वजनराज्य, स्वराज्य होगा : उसमें सबको अपने ऊपर शासन-अनुशासन रखना होगा। स्वयं राजा को भी आत्म-शासन करना होगा—

राजतन्त्र

शासन सब पर है इसे न कोई भूले,
शासक पर भी, वह भी न फूलकर ऊले![1]

रामराज्य का तन्त्र इस प्रकार जनता का, प्रजा का तन्त्र होगा। सबका अधिकार स्वतन्त्र और सुनियंत्रित होगा।

निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को![1]

स्वतन्त्र होते हुए भी प्रत्येक नागरिक को नैतिक बन्धनों में रहना होगा क्योंकि इन्हीं बन्धनों में समाज की मुक्ति निहित है :

जनपद के बन्धन मुक्ति हेतु हैं सबके
यदि नियम न हों उच्छिन्न सभी हों कबके![1]

गाँधीवाद के प्रतिनिधि-काव्य 'साकेत' में राजा और प्रजा का आदर्श सम्बन्ध प्रतिष्ठित हुआ है। राजा अपने न्यायोचित अधिकारों के अनुचित उपभोग से ही पीड़क बनता है, किंतु प्रजा के दुख में दुख और सुख में सुख मानने से वही वरेण्य बन जाता है। 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।' तुलसी द्वारा दिया हुआ यह मंत्र (motto) प्रत्येक राजा का होना चाहिए। राज्य वस्तुतः, राजा की वैयक्तिक भोग्य वस्तु नहीं, प्रजा की थाती (धरोहर) है और राजा उसका

१ 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) : ८वाँ सर्ग

ट्रस्टी (संरक्षक) है। लोकसेवक भरत के शत्रुघ्न से कहे हुए शब्द आदर्श राज्य की अच्छी रूपरेखा देते हैं :

१. राज्य में दायित्व का ही भार,
सब प्रजा का वह व्यवस्थागार,[1]

२. राज्य को यदि हम बना लें भोग,
तो बनेगा वह प्रजा का रोग[1]

३. तात, राज्य नहीं किसी का वित्त,
वह उन्हीं के सौख्य-शान्ति-निमित्त—
स्वबलि देते हैं उसे जो पात्र,
नियत शासक लोक-सेवक मात्र।[1]

यदि यह न हो तो फिर क्रान्ति इष्ट है : जिसमें राजपद और राजत्व का अन्त होकर प्रजातंत्र (जनतंत्र) की प्रतिष्ठा हो :

राज-पद ही क्यों न अब हट जाय !
लोभ मद का मूल ही कट जाय।
कर सके कोई न दर्प न दम्भ,
सब जगत में हो नया आरम्भ।
विगत हों नरपति, रहे नर मात्र,
और जो जिस कार्य के हों पात्र—
वे रहें उस पर समान नियुक्त
सब जियें ज्यों एक ही कुल भुक्त।[1]

आदर्श की स्थिति में 'अराजकवाद' और यथार्थ से समझौते की स्थिति में 'रामराज्य' गाँधी का भी आदर्श राजतंत्र है।

---

१ 'साकेत' (मै० श० गुप्त): सातवाँ सर्ग

हिन्दी के एक दूसरे मूर्द्धन्य कवि श्री जयशङ्कर 'प्रसाद' भी अपने अनेक काव्यों, नाटकों और उपन्यासों में गाँधी के विचारों को अभिव्यक्ति देते हैं। 'कामना' रूपक में भरत-वाक्य के रूप में कवि ने राजा और प्रजा का सम्बन्ध निर्दिष्ट किया है—

खेल लो नाथ विश्व का खेल।
राजा बनकर अलग न बैठो, बनो नहीं बे मेल।
वही भाव लेगी फिर जनता,
भूल जायगी सारी समता,
कहाँ रही प्यारी मानवता,
बढ़ी फूट की बेल!

* *

हम सब हैं हो चुके तुम्हारे,
तुम भी अपने होकर प्यारे,
आओ, बैठो साथ हमारे
मिल कर खेलें खेल!

'जिस दिन ईश्वर और मनुष्य राजा और प्रजा, शासित और शासकों का भेद विलीन होकर विराट् विश्व, जाति और देश के वर्णों से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन क्रीड़ा का अभिनय करेगा' वह दिन आदर्श होगा।

अन्तर्राष्ट्रीयता

गाँधी की राष्ट्रीय अहिंसा का यह रूप देखकर उनकी अहिंसक अन्तर्राष्ट्रीयता की स्वभावतः कल्पना की जा सकती है। मानववाद और सर्वोदयवाद के पुजारी गाँधी के लिये देश-देश में भेद नहीं है। वे वस्तुतः विश्व-बन्धुत्व (world brother-hood) के विश्वासी हैं। सब देश (राष्ट्र) परस्पर मित्र हैं। किसी देश के राष्ट्रवाद का धर्म दूसरे देश पर

आक्रमण करना नहीं हो सकता। गाँधी का राष्ट्रवाद परराष्ट्र की पराजय नहीं चाहता। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अन्तर्राष्ट्रीयता का सर्वोच्च आदर्श है। 'साकेत' का कवि इसी भावना को रामभक्त विभीषण के कण्ठ में मुखरित करता है :

तात, देश की रक्षा का ही कहता हूँ मैं उचित उपाय,
पर वह मेरा देश नहीं जो करे दूसरों पर अन्याय
किसी एक सीमा में बँधकर रह सकते हैं क्या ये प्राण ?
एक देश क्या; अखिल विश्व का तात चाहता हूँ मैं त्राण ![1]

परराष्ट्र के द्वारा आक्रमण होने के समय में गाँधी की अहिंसक अन्तर्राष्ट्रीयता कसौटी पर चढ़ती है। ऐसे समय में गाँधी का आदर्श तो अहिंसक प्रतिरोध ही रहेगा, परन्तु सामान्य मानव की दुर्बलताओं और यथार्थ वस्तु स्थिति के पारदर्शी गाँधी की दृष्टि व्यावहारिक आदेश भी देना जानती है। अपने देश के उष्ण रक्त का प्रतिनिधित्व करते हुए उन्होंने अनेक बार कहा कि मेरी अहिंसा कायर की अहिंसा नहीं है, वह वीर की अहिंसा है। कायरतापूर्वक मर जाने से तो आततायी के अत्याचार के प्रतिरोध में हमें शस्त्र भी उठाना पड़े तो क्षम्य है। जापान अथवा जर्मनी के आक्रमण की घटना में काँग्रेस भी यही आदेश देती। अगस्त १९४२ में 'भारत छोड़ो' रणघोष में भी यही ललकार सुनाई देती है—

भरत खण्ड का द्वार विश्व के लिए खुला है,
भुक्ति मुक्ति का योग जहाँ पर मिला-जुला है।
पर जो इस पर अनाचार करने आवेंगे,
नरकों में भी ठौर न पाकर पछतावेंगे।[2]

---

१ 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) एकादश सर्ग
२ 'साकेत' १२ वाँ सर्ग

विदेश एक सीमा तक मित्र है, परन्तु जब दूसरे देश के धन जिनके लिए वह दूसरे की भूमि पर जाकर कुल लक्ष्मी को हरण करता है तब सामान्य जनता की दृष्टि से गाँधी शास्त्र उठाने को कह देंगे। गाँधीवाद के दूसरे कवि श्रीसियारामशरण गुप्त ने अपने उन्मुक्त काव्य में वैदेशिक आक्रमण में भी अहिंसा की विजय दिखाई है। कुसुम द्वीप पर अचानक अकारण लौह द्वीप का आक्रमण होता है। जयकेतु के शब्दों में कारण हैं—

किया नहीं कुछ, और न कुछ करने के उत्सुक,
यही हमारा दोष, नहीं हम पर-धन इच्छुक,

और इसी को लौह द्वीप ने कुसुम द्वीप की असमर्थता, अबलता, कायरता माना—

क्या यह नहीं यथेष्ट समझ लें दुष्ट दुराशय,
हम लघु, अक्षम, अबल हमारे भीतर है भय।

अस्तु, आक्रमण हुआ। कुसुमावती शान्तिवादिनी है, किसी से विग्रह नहीं चाहती :

शान्त रहो जयकेतु काम तब नहीं कलह का,
कहीं किसी के साथ।

परंतु जयकेतु जानता है कि शान्ति निष्फल और व्यर्थ होगी और कुसुम द्वीप को भी ताम्रद्वीप की भाँति ध्वस्त होना होगा। अतः जीवन-संगर को अपनाना ही एकमात्र कर्त्तव्य है। रणभेरी बज उठी। पुष्पदंत युद्धवादी है और गुणधर शांतिवादी। पुष्पदन्त के लिए :

अब अवकाश कहाँ निश्चित है वीरों का,
एक ही सुपरिणाम एक ही सुगति है।
मृत्यु और जीवन के इस उस कूल में,
एक ही विजय-भूमि निश्चित है उनकी।[1]

---

१ 'उन्मुक्त': सियारामशरण गुप्त

और गुणधर संशयशील है :

और कुछ ऊँचे उठो, युद्ध यह नर का,
नर से नहीं है, वह सामने दनुज है।

× × ×

मायावी महान वह, नित्य नये शस्त्रों से,
साधा है महाविनाश मानव का उसने।[1]

उसके मत में--

वैसे मारकास्त्रों का प्रयोग रणस्थल में,
वीरोचित कार्य नहीं; यह है अधम की।
हिंसा नीति; शूरता जो दिखाती है इसमें,
वह छलना है, भीरुता है छद्मरूपिणी।

युद्ध के प्रति इस वैराग्य में गाँधीवाद की अहिंसा ही मूलगत है।

अन्ततः युद्ध हुआ, क्योंकि सेनानायक पुष्पदंत की यही आज्ञा थी कि स्वरक्षा के लिए किसी भी शत्रु से जूझना धर्म है। बलिदान होने लगे। शत्रु ने गुणधर को बन्दी कर लिया परंतु गुणधर इसी को मुक्ति मानता है:

बन्दी नहीं आज मैं विमुक्त मृत्युंजय हूँ !

गुणधर की पत्नी मृदुला ने स्वदेश की रक्षार्थ भस्मक अस्त्र से युक्त विमान शत्रु के विनाश के लिए भेजा है, परंतु वह शत्रु के हाथ में पड़ गया और कुसुमद्वीप पराजित हुआ। इस प्रकार प्रबल हिंसा ने अबल हिंसा को झुका दिया। पराजय के कारण युद्धवादी पुष्पदन्त को पूर्ण अहिंसावादी होना पड़ा।

---

१ 'उन्मुक्त': सियारामशरण गुप्त

(१)

प्रतिहिंसा में छिपा हुआ निज का अभिमानी
कोई हिंसक क्रूर स्वयं हममें बैठा था;
जो वैरी में वही हमारे में पैठा था।
हार हमारी हुई, हेतु इसका है केवल—
हम में कपट, असत्य, पाशविक हिंसा का बल
बैरी जितना न था।"

(२)

हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है वही हमारा भी है मंगल।
मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर —
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।"

गाँधी की भाँति पुष्पदंत भी मानता है:

"हिंसक भी है नहीं निरा दानव ही दानव;
सोया है अज्ञान-दशा में उसका मानव।
चेतेगा वह नहीं ग्राम्य गुरु के ताड़न से।
रोष-रहित सप्रेम स्वयं के कष्ट-सहन से।
कर उसका उन्नयन स्वयं उन्नत होंगे हम।"

अहिंसावाद का यह सिद्धांत अभी तक कहीं सत्य चरितार्थ नहीं हो पाया है, फिर भी गाँधी का विश्वास यही है। 'उन्मुक्त' में एक काल्पनिक देश में गाँधी का यह विश्वास सत्य होता हुआ दिखलाया गया है।

इस क्षेत्र में सेठ गोविंददास का 'नवरस' नाटक भी उल्लेखनीय है, जिसमें नाटककार ने एक कल्पित कथानक द्वारा युद्ध की भीषणता और अनैतिकता का सजीव चित्र अंकित करके युद्ध पर अहिंसात्मक सत्याग्रह की विजय दिखाई है।

रामनरेश त्रिपाठी रचित 'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' प्रबन्ध काव्यों में भी स्वदेश-सेवा में, परराष्ट्र के आक्रमण में और विदेशी पराधीनता में अहिंसा को चरितार्थ होते हुए दिखाया गया है। पर-राष्ट्र के आक्रमण में 'अहिंसा' कहाँ तक कृतकार्य होगी यह प्रश्न आज विचारणीय अवश्य है।

इस प्रसंग में मैं स्वरचित 'जौहर' काव्य के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहे बिना आगे नहीं बढ़ सकता। एक शक्ति (राष्ट्र या जाति) के दूसरी शक्ति पर आक्रमण करने की परिस्थिति में 'अहिंसा' के नीति-विधान में कुछ गाँधी-विचारकों की दृष्टि में युद्ध को कोई स्थान नहीं है; परन्तु यह निश्चित है कि अन्य गाँधीवादी तत्त्व-चिन्तकों के मत में युद्ध, विशेष परिस्थिति में, 'अहिंसा' का विरोधी नहीं है। 'जौहर' में इसी दूसरे मत का प्रतिपादन है। सत् और असत्, न्याय और अन्याय का शाश्वत संघर्ष ही सांसारिक युद्ध में भी प्रतिफलित होता है: इसी दृष्टि बिन्दु से गीता में प्रतिपादित कौरव-पाण्डव का युद्ध न्याय है और गाँधी उसके अप्रतिम समर्थक हैं। 'जौहर' में मेवाड़ और दिल्ली, रत्नसेन और अलाउद्दीन की शक्तियों का युद्ध है, उसे हिंसा का प्रचारक न मानकर अहिंसा के एक पक्ष का उद्घाटक कहना चाहिए।

बुरा बुरा है, भला नहीं वह भले हमारा भाई है;
और शत्रु क्या है इस जग में? वह तो एक 'बुराई' है![1]

'जौहर' के पद्मिनी के आत्मोत्सर्ग को अन्त में विपक्षी के हृदय-परिवर्तन में पर्यवसित भी किया गया है:

पलकों के पावनतम जल से अन्तर्तम का पाप धुला!
उसके जीवन में छाया जो वह युग-युग का शाप खुला![2]

---

१ 'जौहर': प्रथम ज्वाला: १३
२ वही: षष्ठ ज्वाला: ७६

यह स्पष्टतया गाँधी-तत्त्व-दर्शन की झलक है। आधुनिक युग का कौन भारतीय कवि गाँधी के जीवन-व्यापी तत्त्वज्ञान से अछूता रह सकता है ?

सर्व-धर्म-समभाव

गाँधी ने अपने अहिंसक जीवन-दर्शन में सर्व-धर्म-सहिष्णुता और सर्व-धर्म-समभाव को राष्ट्रीय धर्म माना है। उन्होंने अपने आश्रम की प्रार्थना में सभी धर्मों के धर्म-ग्रंथों को उचित प्रशस्ति दी है, उनकी पूजोपासना को प्रतीक रूप में प्रतिष्ठित किया है और अपने जीवन में इसका अनेक बार पदार्थ पाठ भी दिया है।

सर्व-धर्म समभाव को अपनी कृतियों का विषय बनाने की प्रेरणा सबसे अधिक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने ग्रहण की है। उनकी लेखनी से जहाँ हिंदू महापुरुषों का जीवन चित्रित हुआ है, जैसे 'साकेत, 'यशोधरा', 'द्वापर,' 'त्रिपथगा', 'सिद्धराज' में, वहाँ सिक्खों के गुरु नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जुन, हरगोविंद, हरराय, हरिकृष्ण, तेगबहादुर, गोविंद सिंह और बन्दा वैरागी की कथा भी वर्णित की है। यह सत्य है कि इनमें से अधिकांश सिक्ख गुरुओं का स्तवन मुसलमान शासकों की निंदा हो जाता है, परंतु कवि की दृष्टि में हेय हिंदू या मुसलमान मात्र नहीं हैं, नीच व्यक्तित्व हेय है :

हिंदू हो या मुसलमान हो,
नीच रहेगा फिर भी नीच ;
मनुष्यत्व सबके ऊपर है
मान्य महिमण्डल के बीच।

और लेखक की प्रार्थना है कि

हिंदू मुसलमान दोनों अब
छोड़ें वह विग्रह की नीति,

१ 'गुरुकुल' (बन्दा वैरागी)

प्रकट की गई है यह केवल
अपने वीरों के प्रति प्रीति ।[1]

सियारामशरण गुप्त ने हिंदू और मुसलमानों की एकता के महान् समर्थक, हिंदू-मुसलिम-विप्लव की अग्नि के हव्य स्व० गणेश शंकर विद्यार्थी को अपने 'आत्मोत्सर्ग' काव्य का नायकत्व दिया है। यहाँ भी कवि का उद्देश्य हिंदू-मुसलिम-विग्रह का प्रचार करना नहीं है, वरन् एक ज्वलन्त आदर्श को प्रशस्ति देना है।

नाटककारों ने भी सर्व-धर्म-समभाव से प्रेरणा पाई है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'राष्ट्र मंदिर', श्री उदयशंकर भट्ट के 'एक ही क़ब्र में' और सेठ गोविन्द दास के 'ईद और होली' नामक ऐकांकी नाटकों का विषय हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य ही है। भिन्न-भिन्न कथानकों द्वारा नाटककारों ने हिन्दू-मुसलमानों की तात्विक, आध्यात्मिक एकता और सामाजिक जीवन में प्रीति का सन्देश दिया है। रामनरेश त्रिपाठी की 'बफाती चाचा' भी ऐसी ही नाटिका है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने 'रक्षा बंधन', 'शिवा-साधना' और 'स्वप्न भंग' नामक नाटकों में इतिहास की घटनाओं से चुनकर भारत में हिन्दू और मुसलमानों की एकता के भावों और प्रयत्नों का सन्देश दिया है। 'रक्षा बंधन' में मेवाड़ की महारानी कर्मवती की 'राखी' की प्रतिष्ठा करने वाले हुमायूँ का गुजरात के मुसलमान बादशाह बहादुरशाह से युद्ध करना दिखाया गया है। 'शिवा-साधना' और 'स्वप्न-भंग' में भी हिन्दू-मुसलिम एकता का ही सन्देश प्रखर है। इस प्रकार के नाटक लिखकर साहित्यकारों ने अपने आदर्श को अभिव्यक्ति दी है और राष्ट्र की सेवा की है।

हाल ही में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'काबा और कर्बला' काव्य लिखा है, जिसके प्रथम खंड 'काबा' में इस्लाम धर्म के तत्वों और गुणों का

---

१ 'गुरुकुल' : उपोद्घात

परिचय दिया है और दूसरे खंड 'कर्बला' में 'कर्बला' की हुसैन की करुण घटना की कथा गाई गई है। हजरत इमाम हुसैन के प्रति पाठक की पूर्ण सहानुभूति उसमें हो जाती है।

कथा-कहानीकारों ने 'हिन्दू मुसलिम एकता' के राष्ट्रीय धर्म की प्रेरणा अपनी कहानियों में दी है। प्रेमचन्द की 'पंच-परमेश्वर' कहानी हिन्दू-मुसलिम संस्कृति की एकता की प्रतीक है। राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह का उपन्यास 'राम-रहीम' भी इसी परम्परा में है।

गुप्तजी के इन शब्दों में गाँधी का सर्व-धर्म-समभाव ही अंतर्भूति है :—

क्या साम्प्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो।
बनती नहीं क्या एक माला विविध सुमनों की कहो॥

विषम विश्व का कोना है!
मेरा जहाँ खिलौना है!!

विश्वबन्धुत्ववाद

यही गाँधी का आदर्श है। यही उनका 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। इस मानववादी आदर्श ने कवियों की आदर्श-परायण कल्पना-वृत्ति को इतना अधिक आकृष्ट किया है वे उसे अपने काव्यों, नाटकों और अन्य कृतियों में चरितार्थ करते रहते हैं। आदर्श विश्व-समाज की एक कल्पना मैथिलीशरण गुप्त के एक गीत में मूर्त्त हुई है :

यही होता हे जगदाधार!
छोटा-सा घर होता अपना,
छोटा सा संसार!!

सुमित्रानंदन पन्त ने 'ज्योत्स्ना' रूपकात्मक नाटिका में आदर्श विश्व-व्यवस्था की एक कल्पना प्रस्तुत की है। उसमें जहाँ संसार में प्रचलित पशुबल और मत्स्यन्याय की भर्त्सना की है :

जो है समर्थ, जो शक्तिमान, जीने का है अधिकार उसे !
उसकी लाठी उसका बैल ; पूजता सभ्य संसार उसे !!

वहाँ मनुष्य की सत्य, समता, करुणा, ममता, स्नेह, दया आदि कोमल औ अहिंसक दैवी भावनाओं की प्रशस्ति भी की है और मर्त्यलोक का काया कल्प विश्वबन्धुत्व में किया है। उनकी भावना का चरम बिन्दु कवि के इस मंगल गान में निहित है :

मंगल चिर मंगल हो !
मंगलमय सचराचर मंगलमय दिशि पल हो !!
तमस मूढ़ हों भास्वर,
पतित क्षुद्र उच्च प्रवर,
मृत्यु भीत नित्य अमर,
अग-जग चिर उज्ज्वल हो !
शुद्ध बुद्ध हों सब जन,
भेद-मुक्त, निर्भय मन,
जीवित सब जीवन-क्षण
स्वर्ग यही भूतल हो ![1]

क्या इसमें गाँधी के आदर्श भूलोक की कल्पना नहीं है ?

दार्शनिक दृष्टि से गाँधीवाद की विवेचना इस युग के प्रमुख विचारकों ने की है। कवियों और कथाकारों तथा नाटककारों ने उसको अपनी कृतियों में प्रतिपादित किया है। एक स्थल पर मैथिलीशरण गुप्त स्पष्टतया गाँधी की राजनीति को कूटनीति पर विजयी होने का जय घोष कर रहे हैं :

खुली है कूट नीति की पोल—
महात्मा गाँधी की जय बोल !

---

१ 'ज्योत्स्ना' : सुमित्रानंदन पन्त

उनके मत से गाँधी-नीति ने मानवीय इतिहास में एक नया पृष्ठ पलटा है।

सुमित्रानन्दन पन्त विचार प्रधान कविता में गाँधीवाद की अच्छी तात्त्विक व्याख्या करते हैं :

सत्य-अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जावेगा जगजीवन ?
आत्मा की महिमा से मंडित होगी नव मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त्र हो जावेगी पाशवता ?[1]

प्रश्न में ही सही गाँधीवाद की उनकी कल्पना की छाया इसमें है। हाँ, 'समाजवाद-गाँधीवाद' शीर्षक प्रसिद्ध सोनेट में पन्त ने गाँधीवाद की सत्यता और संस्कृति को जो ऋण दिया है उसे अंकित किया है :

गाँधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण
गाँधीवाद हमें देता जीवन पर अंतर्गत विश्वास,
मानव की निस्सीम शक्ति का मिलता उससे चिर आवास।
व्यक्ति पूर्ण बन, जग जीवन में भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्व कर सकता पशुता से जन का कल्याण।[1]

गाँधीवाद के एक दूसरे प्रसिद्ध कवि गाँधीवाद की छाया में भव का नव-निर्माण चाहते हैं :

करो इस भव में नव निर्माण !
एकता सब धर्मों का धर्म,
अहिंसा हो जीवन का मर्म,
सत्य की सेवा हो सत्कर्म,
विश्व में हो मंगल कल्याण ![2] —सोहनलाल द्विवेदी

---

१ 'युगवाणी' : [illegible] गाँधीवाद   २ 'पूजा-गीत' : ४५

गाँधीजी के जीवन कार्यों की प्रतिच्छाया और प्रतिध्वनि

भारतीय राजनीति के भावी सूत्रधार गाँधी ने १६०६ में अफ्रीका में अपना सत्याग्रह का शंख फूँका और उसकी प्रतिध्वनि भारत में हिंदी कविता में सुनाई देने लगी। सन् १६१३ में अफ्रीका के सत्याग्रह के विजेता इस निःशस्त्र सेनानी के प्रति 'एक भारतीय आत्मा' (श्री माखनलाल चतुर्वेदी) ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की :

१. देश ?—यह प्रियतम भारत देश सदा पशुबल से जो बेहाल,
वेश ?—यदि वृन्दाबन में रहे कहा जावे प्यारा गोपाल।
२. किंतु क्या कहता है आकाश ? हृदय हुलसो सुन यह गुंजार-
पलट जाये चाहे संसार, 'न लूँगा इन हाथों हथियार !'
३. जाति ? वह मजदूरों की जाति, 'मार्ग' वह काँटों वाला सत्य ;
रंग ? श्रम करते जो रह जाय, देख लो दुनिया भर के भृत्य !
कला ? दुखियों की सुनकर तान, नृत्य का रंग-स्थल हो धूल !
टेक ? अन्यायों का प्रतिकार, चढ़ाकर अपना जीवन-फूल !
४. प्यार ? इन हथकड़ियों से और कृष्ण के जन्म स्थल से प्यार !
हार ? कंधों पर चुभती हुई अनोखी जंजीरें हैं हार !
'भार' कुछ नहीं रहा अब शेष, अखिल जगतीतल का उद्धार !
'द्वार ? उस बड़े भवन का द्वार, विश्व की परम मुक्ति का द्वार !'[1]

कर्मवीर गाँधी ने भारत भूमि पर पदार्पण करते ही असहयोग आंदोलन द्वारा भारत के राष्ट्रीय जीवन में युगांतर स्थापित किया। शस्त्र के स्थान पर इस अहिंसा-धर्मी सेनानी ने जनता के हेतु नैतिक और आत्मिक अस्त्र आविष्कृत किया।

'अनघ' का नायक मघ कहता है :
चाहो मन से सबका क्षेम ;
करो प्रहारक पर भी प्रेम।

---

१ 'निशस्त्र सेनानी' : एक भारतीय आत्मा

अहिंसावादी को एक हिंसात्मक राज-शासन में किस प्रकार आचरण करना चाहिए 'अनघ' के द्वारा गुप्तजी ने बताया है। उनके नायक का उद्देश्य ही है—

न तन-सेवा न मन-सेवा,
न जीवन और धन-सेवा,
मुझे है इष्ट जन-सेवा ; सदा सच्ची भुवन-सेवा !

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने राष्ट्र को 'स्वराज्य' (हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है) का महामंत्र दिया था और कर्मवीर गाँधी ने उस अधिकार को प्राप्त करने की कुञ्जी, असहयोग (Non co-op ration) और सविनय अवज्ञा (civil disobedience) तथा 'सत्याग्रह', जनता को दी।

गाँधीजी के सविनय अवज्ञार्थ कारावास की स्वीकृति से जेल हथकड़ी-बेड़ी का मार्ग स्वाधीनता का मार्ग हुआ। विपक्षी से रक्त-दान लेने के बदले उन्होंने उसे रक्तदान देने का धर्म राष्ट्रीय योद्धा के आगे प्रतिष्ठित किया। राष्ट्र की बलिवेदी को अपने मस्तक से सजा देने की दीक्षा सत्याग्रह के अहिंसक शास्त्र ने दी। हिन्दी कवियों ने अपनी वीणा पर इस महान् राष्ट्रीय समारंभ का मंगलाचरण और प्रभातियाँ गाईं। इन कविताओं में राष्ट्र के बलिवीरों को सत्य पर अविचल-अटल रहने पग-पग पर आग से खेलने और हँसते-हँसते आत्मोत्सर्ग करने की प्रबल प्रेरणाएँ थीं। कवि के शब्दों में प्रत्येक सत्याग्रही वीर प्रह्लाद और सुकरात, ईसा और मंसूर होगया:

तुम होगे सुकरात जहर के प्याले होंगे।
हाथों में हथकड़ी पगों में छाले होंगे।
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे।
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे।
होना मत व्याकुल कहीं इस भवजनित विषाद से।
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लाद से।[1]

---

१ 'सत्य' : त्रिशूल

शीर्षदान के इस अनुष्ठान की महिमा में गाँधी भक्त एक दूसरे कवि वियोगी हरि की प्रशस्ति कितनी उद्बोधिनी है:

१. जे जन लोभी सीस के ते अधीन दिन-दीन।
सीस चढ़ाये बिनु भयौ कहौ कौन स्वाधीन?

२. चाहो जौ स्वाधीनता सुनौ मंत्र मन लाय।
बलिवेदी पै निज करनि निज सिर देहु चढ़ाय।[1]

बलि-पंथी के लिए कारागार कृष्ण-मंदिर होगया। कारागार के लिए पूजा-भाव का यह उत्कर्ष कवि-हृदय का ही एक उच्छ्वास रहा होगा। हथकड़ी कृष्ण मंदिर के पुजारी के लिये माला थी। आराध्य राष्ट्र-नेता के संकेत पर सुरपुर का सुख भी हेय और रौरव का दुख भी प्रेय हो गया। पृथ्वी उसके लिए शय्या हो गई और आकाश आच्छादन:

कागों का सुन कर्तव्य-राग कोकिल कलरव को भूल-भूल,
सुरपुर ठुकरा आराध्य कहे तो चल रौरव के कूल-कूल,
भूखंड बिछा, आकाश ओढ़, नयनोदक ले मोदक प्रहार,
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल अपने जीवन-धन को निहार।[2]

उन बलि-बध के जीवों का गन्तव्य स्वतंत्रता देवी का मंदिर था, जो त्याग और तपस्या, सेवा और साधना के शिखर के ऊपर बसा था। मरण उनके लिए श्रेय था—यह पंकिल दासता का जीवन नहीं। इन बलि-वीरों को अनुप्राणित करने के लिए कवि के हृदय में अपार उच्छ्वास-माला थी।

चढ़ चल, चढ़ चल, थक मत रे बलि-वध के सुन्दर जीव,
उच्च कठोर शिखर के ऊपर है मंदिर की नींव।
बड़े-बड़े ये शिलाखंड मग रोके पड़े अचेत,
इन्हें लाँघ तू यदि जाना है तुझे मरण के हेतु;

१ 'वीर सतसई' :१: ६२, और ६५.
२ 'बलि-पंथी से' : एक भारतीय आत्मा

ऊपर अगम शिखर के ऊपर मचा मृत्यु का है रासः
नीचे उपत्यका में जीवन—पंकिल का है त्राल।[1]

आत्मोत्सर्ग और आत्मबलि की इस नवीन भावना ने सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति पाई 'एक भारतीय आत्मा' की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता में :

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि - डाला जाऊँ;
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड़ लेना बनमाली। उस पथ पर देना तुम फेंक-
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक![2]

भारतीय राजनीति का एक युग सविनयअवज्ञा (असहयोग) और और सत्याग्रह आंदोलनों में निहित है।

सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह आंदोलन

'साकेत' के चरित-नायक राम वन में जा रहे हैं और पौर जन उन्हें वन में जाने देना चाहते नहीं हैं। वे जानते हैं लोकमत का महत्त्व और मूल्य, और इसलिए वे राम से कहते हैं और कहते ही नहीं हैं 'सत्याग्रह' (विनत विद्रोह) करते हैं :

* * * भद्र, न ऐसा तुम कहो,
देते हैं हम तुम्हें विदा ही कब अहो।
राजा हमने राम, तुम्हीं को है चुना,
करो न यों तुम हाय! लोकमत अनसुना।
जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहाँ।"
यों कह पथ में लेट गये बहुजन वहाँ।

---

१ 'शिखर पर' : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
२ 'पुष्प की अभिलाषा' : एक भारतीय आत्मा

राम के रथ के आगे और जनों के लेट जाने का यह 'विनत विद्रोह' देखकर राम कहते हैं;

"उठो प्रजा-जन, उठो, तजो यह मोह तुम,
करते हो किस हेतु विनत विद्रोह तुम ?

और राजा-प्रजा का आदर्श सम्बन्ध व्यंजित करते हैं;

"तुमसे प्यारा मुझे कौन ? कातर न हो,
मैं अपना भी त्याग करूँ तुम पर कहो ?
सोचो तुम सम्बन्ध हमारा नित्य का,
जब से भव में उदय आदि आदित्य का,

'आदर्श राजा के लिए प्रजा उसकी प्रकृति है—

प्रजा नहीं, तुम प्रकृति हमारी बन गये,
दोनों के सुख-दुख एक में सन गये।

गाँधी के नेतृत्व में संचालित 'सविनय अवज्ञा' का ही यह 'विनत विद्रोह, एक रूपान्तर है।

असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलनों में लोक कविताओं और लोक गीतों की इतनी विपुलता थी कि उनसे एक महान् ग्रन्थ की सृष्टि हो सकती है।

प्रेमचन्द की अनेक कहानियों में गाँधी के असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलन प्रतिध्वनित हुए हैं। उनकी कई कहानियाँ तो गाँधीजी के देश-व्यापी आन्दोलनों की जीवन-श्वास को लेकर ही जी रही हैं। जिस समय गाँधीजी के आन्दोलन भारतीय युवकों और साहित्यकारों को अनुप्राणित कर रहे थे तब युवकों ने स्कूल-कॉलेज छोड़े और कर्मचारियों ने अपनी-अपनी नौकरियाँ, साहित्यकारों ने भी अपनी लेखनी से राष्ट्रीय धर्म का पालन किया था। प्रेमचन्द जी की राष्ट्रीय कहानियों ने ही उन्हें सरकार का कोपभाजन बनाया था। वे जब्त कर ली गई थीं। यही दशा अन्य साहित्यिक कृतियों की

हुई थी। प्रेमचन्द जी की 'समरयात्रा' कहानी-संग्रह में तो कहानीकार की राष्ट्रीय अभियान सूचक कहानियाँ ही संकलित हुई हैं। 'समरयात्रा' कहानी में गाँधी जी और कांग्रेस के सत्याग्रह की प्रतिध्वनि देखिए—

"आज सवेरे ही से गाँव में हलचल मची हुई थी। कच्ची झोंपड़ियाँ हँसती हुई जान पड़ती थीं। आज सत्याग्रहियों का जत्था गाँव में आवेगा।" सत्याग्रहियों की एक वेशभूषा की झलक भी देखिए: "दो दो आदमियों की कतारें थीं। हर एक की देह पर खद्दर का कुर्ता था, सिर पर गाँधी टोपी, बगल में थैला लटकता हुआ, दोनों हाथ खाली, मानों स्वराज्य का आलिंगन करने को तैयार हों।"[१] गाँधी के प्रति जनता की भावना की एक झलक लीजिए "धन्य हैं महात्मा और उनके चेले, जो दीनों का दुःख समझते हैं, उनके उद्धार का जतन करते हैं।"[१] 'समरयात्रा' कहानी में सत्याग्रहियों के आगमन, उनकी सभा, व्याख्यान, पुलिस द्वारा हस्तक्षेप, गिरफ्तारी, जयनाद, अहिंसक प्रतिरोध, के ओजस्वी चित्र हैं। नायक की वाणी "भाइयों, मैं आप से कह चुका हूँ। यह न्याय और धर्म की लड़ाई है और हमें न्याय और धर्म के हथियारों से ही लड़ना है। दारोगा ने कोदई चौधरी को गिरफ्तार किया है। मैं इसे चौधरी का सौभाग्य समझता हूँ। धन्य हैं वे लोग, जो आजादी की लड़ाई में सजा पाएँ।" तो जैसे गाँधी की ही वाणी हो। इसी प्रकार 'शराब की दूकान' कहानी का जयराम कहता है—"भाइयो, महात्मा गाँधी का हुक्म है कि आप लोग ताड़ी-शराब न पियें जो रुपये आप यहाँ उड़ा देते हैं, वह अगर अपने बाल-बच्चों को खिलाने-पिलाने में खर्च करें तो कितनी अच्छी बात हो! जरा देर के नशे के लिए आप अपने बाल-बच्चों को भूखों मारते हैं, गंदे घरों में रहते हैं, महाजन की गालियाँ खाते हैं। सोचिए, इस रुपये से आप अपने प्यारे बच्चों को कितने आराम से रख सकते हैं।"[२] इस कहानी में मिसेज़ सक्सेना गाँधी-युग की समाज-सेविका

१ 'समरयात्रा' : प्रेमचन्द

२ 'शराब की दूकान' : प्रेमचन्द

अथवा राजनीतिक कार्यकर्त्री की प्रतिरूप हैं। 'जुलूस' कहानी में जनता की भीड़ को कुचलने वाले एक पुलिस अफसर का अपनी स्त्री के सत्प्रयत्न से हृदय-परिवर्तन होने की बात दिखाई गई है।

देश के वातावरण में जिस समय 'सविनय अवज्ञा' और 'असहयोग' के घोष गूँज रहे थे तब हिन्दी के कई राष्ट्र-कवियों ने अपनी कविताओं में उस उत्साह को व्यक्त किया। उनकी कला ने जनता को मानसिक प्रेरणा देने का महान् कार्य किया। प्रेमी जी ने अपनी 'स्वर्ण-विहान' नाटिका में गाँधीवादी देशभक्ति के आदर्श का पदार्थ-पाठ देते हुए हिंसा पर अहिंसा की विजय दिखाई है। गाँधी की वाणी उसमें बोलती हुई सुन पड़ती है;

नहीं नहीं ऐ पगले यौवन,
जीत प्रेम से पापाचार।
अरे पाप से पाप मिटाना
महा भूल है व्यर्थ विचार।

+ + +

कहीं आग से आग बुझाना
है संभव ऐ युवक विचार।
धर्म सत्य जिस ओर रहेंगे
उसी ओर होंगे करतार।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'अनघ' गीति-नाट्य में गाँधी की क्रियात्मक राजनीति की प्रेरणा से युगधर्म का सन्देश दिया है।

गाँधी युग की समस्त राजनीति और चिन्ता धारा रामनरेश त्रिपाठी के तीन प्रबन्ध काव्यों—'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' में मुखरित हुई। 'पथिक' में देश-सेवक पथिक एक 'सत्याग्रही' है, जो अयोग्य राजा की पीड़ित प्रजा की सेवा का व्रती है। सेवा-पथ में वह संकट सहता हुआ पुत्र-कलत्र को मरते देखता है और स्वयं बलि हो जाता है। बलिदान के

उपरान्त जनता अनुप्राणित होती है और 'असहयोग' द्वारा विजय प्राप्त करती है। अत्याचारी राजा को वह निर्वासित करती है और जनता का राज्य —' स्वराज्य ' स्थापित होता है। इसका सत्याग्रही ' पथिक ' गाँधी का ही प्रतिरूप है जैसे ' अनघ ' का मघ। 'मिलन' और ' स्वप्न ' काव्यों में यही रण-नीति अधिक उग्र हो गई है, उसमें भावी का संकेत है जैसे 'स्वप्न' में विदेशी आक्रमण के प्रतिरोध में शस्त्र उठाने का रणघोष है। 'मिलन' में नायक-नायिका स्वतंत्र किंतु एक दूसरे से अज्ञात रूप में समाज-सेवक बनते हैं, जनता संगठित होती है, विदेशी आततायी शासक से युद्ध होता है, नायक आहत होता है और मृत्यु के मुख से निकल आता है। सहसा नायिका के आक्रमण से शत्रु परास्त होता है और स्वदेश पुनः स्वतंत्र हो जाता है। यह गाँधी-युग के राष्ट्रीय जीवन—राष्ट्रीय रणनीति और राजनीति—की ही प्रतिच्छाया है। जैसे भारतीय राजनीति को गाँधी के सत्याग्रह ने उग्र नहीं बनने दिया, वैसे ही गाँधीयुग की कविताओं में उग्र हिंसक आक्रोश नहीं आया। इस काल की कविताओं का सौम्य और उदात्त स्वर गाँधी के सौम्य अहिंसात्मक दर्शन का ही प्रभाव है।

देश में गाँधी के नेतृत्व में चलने वाले विविध सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों को कवियों और कथाकारों ने अपना विषय (theme) बनाया है। बारडोली सत्याग्रह पर मैथिली बाबू ने लिखा था—

ओ विश्वस्त बारडोली,
ओ भारत की थर्मा पोली।

इसी प्रकार गाँधीजी के चम्पारन और खेड़ा के आन्दोलनों पर भी कवितायें लिखी गईं हैं। एक कविता में राष्ट्रीय आंदोलन कितना अधिक बोल रहा है, देखिए---

बहनें कई सिसकती हैं, सिसक न उनकी मिट पाई,
लाज गँवाई गाली पाई, तिस पर भी गोली खाई;[1]

---

१ 'मुकुल' : सुभद्रा कुमारी चौहान

जेल के लिए जाते समय की एक विदाई देखिए—

कृष्ण मंदिर में प्यारे बन्धु पधारो निर्भयता के साथ,
तुम्हारे मस्तक पर हो सदा कृष्ण का वह शुभचिंतक हाथ।[1]

गिरफ्तारियों और वारंटों की गूँज उन दिनों की कविताओं में है—

तिलक, लाजपत, गाँधीजी भी बन्दी कितने वार हुए,
जेल गये जनता ने पूजा, संकट में अवतार हुए;
जेल! हमारे मनमोहन के पावन जन्म-स्थान,
तुझ को सदा तीर्थ मानेगा कृष्ण-भक्त यह हिंदुस्थान;[1]

सत्याग्रह आंदोलन पर 'नवीन' जी का लिखा हुआ 'पराजय-गीत' हिन्दी कविता में अत्यन्त प्रसिद्ध है—

आज खड्ग की धार कुंठिता है खाली तूणीर हुआ।
विजय-पताका झुकी हुई है लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ।
वर्दी फटी, हृदय घायल, मुख पर कालिख क्या वेश बना,
आँखें सकुच रहीं कायरता के पंकिल में देश सना।

अरे पराजित ओ रणचंडी के कुपूत हट जा, हट जा!
अभी समय है कह दे माँ मेदिनी जरा फट जा, फट जा!

सोहनलाल द्विवेदी की कविता में गाँधी जी की समस्त राजनीतिक घटनाएँ, उनके अभियान और आंदोलन गेय हुए हैं। उनकी 'दाण्डी-यात्रा' तो ऐतिहासिक कविता है:

रण-यात्रा में है चला आज
वृन्दावन का वंशीवाला;
बोला तब लवण-सिंधु पूजूँ,
लावण्यमती, जा कुछ ले आ;
× × ×

---

१ 'मुकुल': सुभद्राकुमारी चौहान

जब ब्रिटिश राज्य के दूतों ने
कुछ भी न न्याय का मत माना;
अन्याय भंग करने को तब
बापू ने यह रण-प्रण ठाना।
आश्रम में गूँज उठा संदेश—
कल प्रात समर यात्रा - होगी,
जिसको चलना हो चले साथ,
जो हो अपने घर का योगी !

× × ×

बापू ले अपनी चिर संगिनि
जो है उनकी लघु सी लकुटी,
चल पड़े सुदृढ़ पा, सुदृढ़ बाहु
दृढ़ कर अपनी सीधी भ्रकुटी ! —इत्यादि

द्विवेदीजी ने गाँधी जी के काँग्रेस से संन्यास ग्रहण करने पर लिखा था।

साबरमती आश्रमवाले !
ओ दाण्डी यात्रा वाले !
यह वर्धा में कौन मौन व्रत
ले बैठे ओ मतवाले ?
इधर आओ बतलाओ राह,
हो रहे कोटि कोटि गुमराह।

उनके ऐतिहासिक उपवास पर द्विवेदी जी ने लिखी थी एक मुक्त - कविता—

हे दधीचि !
अस्थियों को आज नाश
करो मत करुणा निधान !

व्रत-समाप्ति पर उल्लास मनाया था। देश में जब-जब आंदोलन चले इस राष्ट्रीय कवि ने भेरी बजाई—

मेरे वीरो! तैयार रहो रणभेरी बजनेवाली है,
मेरे वीरो! तैयार रहो, फिर टोली सजने वाली है।

'४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह पर भी उसने प्राणप्रेरक कवितायें लिखीं—

आज सोये प्राण जागे!
देश के अरमान जागे!
सज चली अक्षौहिणी है,
बज चली रण-किंकिणी है,
कोटि-कोटि चरण-धरण से
युगों के प्रस्थान जागे!

'४२ के महान् विप्लव में इन पंक्तियों के लेखक ने चुनौती दी थी:

कोटि कोटि कण्ठो से गूँजा आज यही जयघोष नवीन,
भारत हम सबका स्वतंत्र है, भारतीय हम सब स्वाधीन!

और प्रेरणा दी थी—

धर्म अहिंसा का ले मन में,
बलि का कर्म प्राण में, तन में,
संजीवन पा लें जीवन में
बन जावें हम मृत्युञ्जय! स्वतंत्र भारत, जय जय जय!

गाँधी के 'करो या मरो' सन्देश की भी एक प्रतिध्वनि सुनिए—

उठो कुछ करो वीर
या मर मिटो धीर
उठा यों गरज शंख का घोष गंभीर!

इस विप्लव-बेला में भारत के असंख्य कवियों ने गाँधी और उनके अभियानों के प्रति अपना कण्ठ मुक्त किया था।

गाँधी और हिन्दी वाङ्मय

माता कस्तूरबा की चिता पर राष्ट्रपिता बापू ने जो दो अश्रुबिन्दु टपकाये थे उसपर जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने लिखा था—

एक क्षण, दो अश्रुकण लघु, मूक, निर्मल !
दूसरे ही क्षण उठा चुपचाप
वस्त्र का कोना, विकंपित हाथ से,
ले गया वह पोंछ अपने साथ मानो
बिन्दुओं में वेदना के सिंधु दो !

गाँधी के गोलमेज से आने के समय भारत की आकांक्षा का चित्र—'बच्चन' के 'स्वागत' में है तो उनके जन्मदिवस पर अनेक कविगण प्रतिवर्ष अपनी श्रद्धाञ्जलि चढ़ाते हैं। हिंदी का कौन सा ऐसा कवि है जिसने इस महान् विश्व विभूति के प्रति दो श्रद्धा-बिंदु देकर अपने काव्य कृतित्व को कृतार्थ न किया हो ?

गाँधी-विचार और गाँधीवाद का इतना अधिक प्रभाव भारतीय साहित्य-कारों के मनोजगत् के भाव-लोक पर पड़ा है कि शत-शत लेखक तो गाँधीवादी ही हैं। हिंदी के मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त, 'हरिऔध' और जयशंकर 'प्रसाद', महादेवी और सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सोहनलाल द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवि और कवयित्रियाँ, जैनेन्द्र कुमार और प्रेमचन्द, वियोगी हरि और रामनाथ 'सुमन', हरिभाऊ उपाध्याय, घनश्याम दास बिड़ला आदि लेखक और विचारक गाँधीवादी रंग में रंगे हुए हैं। सर्वश्री किशोरलाल घ० मश्रूवाला, आचार्य काका कालेलकर, नाना भाई भट्ट, विनोबा भावे आदि आदि अनेक विचारक ,साहित्यकारों ने विभाषाभाषी होकर भी हिंदी वाङ्मय को गाँधी-विचार-धारा प्रदान की है।

गाँधी-विचार-धारा से अविच्छिन्न अनेक प्रकाशन-संस्थान हिंदी-जगत् में कर्मशील हैं, जिनमें अजमेर (अब दिल्ली) का 'सस्ता साहित्य मण्डल'

मूर्द्धन्य है। गुजराती, मराठी, अंग्रेजी भाषाओं के विविध गाँधीवादी लेखकों की कृतियाँ मण्डल के द्वारा प्रकाश में आई हैं। वर्धा से प्रकाशित 'सर्वोदय' मासिक और दिल्ली और अब अहमदाबाद से प्रकाशित 'हरिजन-सेवक' साप्ताहिकों ने हिन्दी-जगत् में गाँधी-विचारों का प्रसार करने में अग्रगामित्व किया है।

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने गाँधी जी की छत्रछाया में हिन्दी का देश के कोने-कोने में प्रचार और प्रसार देखा और भाषा को भी अखिल राष्ट्रीयत्व देने में गाँधी का हिन्दी पर असीम ऋण है। गाँधी जी का ही प्रताप है कि हिन्दी आज सरकारी रूप में राजभाषा बनने जा रही है।

प्रशस्तियाँ

विश्वविभूति गाँधी के चरणों में शत-सहस्र भारतीय कवि-गायकों ने श्रद्धा-कुसुम चढ़ाये हैं। राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध, महावीर, जरथुस्त, मुहम्मद की कोटि में आनेवाले गाँधी में तो कवियों ने देवत्व की प्रतिष्ठा की है। सामान्य जनता की इस भक्ति का अनुमान इस तथ्य से ही लगाया जा सकता है कि देश की जनता के कण्ठों के अनेक लोक-गीतों में उन्हें देव रूप में स्मरण किया जाता है। एक कविता (या गीत) में मुझे स्मरण है गाँधी की मोहन (कृष्ण) से समता दिखाई गई है। मोहनदास की गाय बकरी है और उनकी बाँसुरी है तकली। दोनों कारागृह के वासी हैं और दोनों 'मोहन' हैं। एक को माखन प्रिय है तो दूसरे को 'नमक'। वह कविता अच्छी प्रसिद्ध हुई थी। गाँधी के चरणों में हिन्दी के मैथिलीशरण, माखनलाल, 'नवीन,' सुमित्रानन्दन पन्त, सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी जैसे सिद्ध-प्रसिद्ध कवियों ने ही नहीं असंख्य ज्ञात-अज्ञात कवियों ने अपनी श्रद्धा की अञ्जलियाँ चढ़ाई हैं।

दक्षिण अफ्रीका के यशस्वी गाँधी के प्रति हिन्दी के कवि ने ही उन्हें अहिंसक सेना के 'निःशस्त्र सेनानी' के रूप में अभिनंदित किया था—

उधर वे दुःशासन के बंधु, युद्ध-भिक्षा की झोली हाथ ;
इधर ये धर्म-बंधु नभसिंधु, शस्त्र लो, कहते हैं, 'दो साथ,'
लपकती हैं लाखों तलवार, मचा डालेंगी हाहाकार ;
मारने-मरने की मनुहार, खड़े हैं बलि-पशु सब तैयार !
किंतु क्या कहता है आकाश ? हृदय ! हुलसो सुन यह गुंजार :—
'पलट जाये चाहे संसार, न लूँगा न हाथों हथियार !'"[१]

और वियोगी हरि की वाणी में वे सत्य-वीर हैं और सत्यवादी हरिश्चन्द्र की स्मृति सजग करते हैं :

इत गाँधी उत सत्य दोउ मिले परसपर चाहि।
यह छाँड़त नहिं ताहिं त्यों वह छाँड़त नहिं याहि।
धनि तेरी तप-धीरता धनि गुण गण गंभीर।
या कलि में गाँधी ! तुही इक सत्याग्रह-वीर !
नहिं विचल्यौ सतपंथ तैं सहि असह्य दुख-द्वंद।
कलि में गाँधी रूप ह्वै पुनि प्रगट्यौ हरिचन्द।[२]

कविवर सुमित्रानंदन पंत में 'बापू के प्रति' बुद्धि मूलक पूजा-भावना है, अन्ध-श्रद्धा-प्रेरित नहीं, क्योंकि बापू मानव की नग्न पशुता के उद्धारक हैं, उसे मानवता में विकसित करने वाले महापुरुष हैं :

जड़ता, हिंसा, स्पर्द्धा में भर चेतना अहिंसा नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया तुमने मानवता का सरोज ![३]

बापू घृणा के ऊपर प्रेम की विजय हैं, विश्वानुरक्त हैं, सर्वस्वत्यागी हैं, अन्धकार-भ्रान्त राष्ट्र के प्रकाशदाता हैं, मानवी कला के सूत्रधार हैं, यत्राभिभूत युग में मानव के परित्राता हैं, जगजीवन के संचालक हैं—

---

१ 'निःशस्त्र सेनानी' ('एक भारतीय आत्मा')

२ 'वीर-सतसई' : १: ३३-३५

१. पशुबल की कारा से जग को दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष, घृणा से लड़ने को सिखलाई दुर्जय प्रेम-युक्ति;
वर श्रम प्रसूति से की कृतार्थ तुमने विचार-परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त! सर्वस्व-त्याग को बना भुक्ति!
२. जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए आत्मा महान,
यंत्राभिभूत युग में करने मानव जीवन का परित्राण;

गाँधी की समस्त विभूतियों का आकलन पन्त की इस प्रशस्ति में है :

आत्मिक बल :

जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के मन के मनोज!

अहिंसा-धर्म :

इस भस्म काम तन की रज से जग पूर्ण काम नव जगजीवन,
बीनेगा सत्य-अहिंसा के ताने-बानों से मानवपन!

सत्यान्वेषण :

सुख भोग खोजने आते सब आए तुम करने सत्य खोज,

अनासक्ति और त्याग :

विश्वानुरक्त हे अनासक्त! सर्वस्व-त्याग को बना भुक्ति!

खादी-चरखा

१. सदियों का दैन्य तमिस्र तूम धुन तुमने कात प्रकाश-सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत।
२. उर के चरखे में कात सूक्ष्म युग युग का विषय-जनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग को भर तुमने आत्मा का निनाद!
रँग रँग खद्दर के सूत्रों में नव जीवन, आशा, स्पृहा, ह्लाद,
मानवीकला के सूत्रधार! हर दिया यंत्र-कौशल प्रवाद![1]

१ 'बापू के प्रति' : सुमित्रानंदन पंत

असहयोग और सत्याग्रह :

सहयोग सिखा शासित जन को शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से रोका मिथ्या का बल-प्रहार ![1]

मानववाद :

१. संसार छोड़कर ग्रहण किया नर जीवन का परमार्थ-सार,
अपवाद बने, मानवता के ध्रुव नियमों का करने प्रचार ![1]
२. मथ सूक्ष्म स्थूल जग बोले तुम--मानव मानवता का विधान ![1]

पन्त ने साम्राज्यवाद को कंस, मानवता को वंदिनी देवकी, दासता को बेड़ियाँ, मानव आत्मा को कृष्ण और जनशोषण को यमुना का प्रतीक मानकर गाँधी में देवत्व की भी कल्पना की है :

साम्राज्यवाद था कंस, वंदिनी मानवता पशुबलक्रान्त,
शृंखला-दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन-पद शक्ति-भ्रान्त ;
कारागृह में दे दिव्य जन्म मानव आत्मा को मुक्त, कान्त,
जन शोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नत-पद-प्रणत शान्त !

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के 'गुरुदेव गाँधी' सुरस्यधारा-पथ-गामी और नीलकण्ठ हैं :

हे सुरस्य धारा पथगामी ! हे जगमोहन जय-जय हे !
युद्ध वीर हे, रुद्ध पीर हे, नीति-विदोहन जय-जय हे !
अनय-विजय हे,अभय —निलय हे, सदय हृदय पापक्षय हे !
हे कृतान्त से कालकूट तुम, जीवन-दायक मधुपय हे ![2]

गाँधी की अहिंसा का प्राणोत्पादक प्रभाव कवि की इन पंक्तियों में अंकित हुआ है—

धन्य हुई यह वसुधा वृद्धा, मानवता यह धन्य हुई !
तव विप्लवकारी प्रसाद से भय-भावना नगण्य हुई !!

---

१ 'बापू के प्रति' : सुमित्रानंदन पंत २ 'गुरुदेव गाँधी' : 'नवीन'

ये मिट्टी के पुतले भी बढ़ बढ़ लड़ गढ़ चढ़ने दौड़े
क्या ही फूँके प्राण कि इतने सदियों के बन्धन तोड़े ?
आज उठी है अश्रुत स्वर लहरी जगती के अम्बर में,
एक नवल उत्साह वीचि फैली है सकल चराचर में।
आज शस्त्र-अस्त्रों की घातें खूब कुंठिता हुई भली,
"अक्कोधेन जिनेक्कोधम्" की क्या ही चर्चा नई चली ![1]

सोहनलाल द्विवेदी के हृदय में बापू के प्रति भक्ति-भाव है। उन्होंने गाँधी में गीता के विराट् मूर्त्ति विष्णु की भाँति उनके कोटिचरण, कोटिबाहु, कोटिरूप और कोटिनाम रूप का भावन किया है :

चल पड़े जिधर दो डग मग में चल पड़े कोटि पग उसी ओर ;
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि गड़ गये कोटि दृग उसी ओर !
जिसके शिर पर निज धरा हाथ उसके शिर रक्षक कोटि हाथ ;
जिस पर निज मस्तक झुका दिया, झुक गये उसी पर कोटि माथ !
हे कोटि-चरण ! हे कोटि-बाहु ! हे कोटि-रूप ! हे कोटि-नाम !
तुम एक मूर्त्ति, प्रतिमूर्त्ति कोटि, हे कोटिमूर्त्ति तुमको प्रणाम ![1]

गाँधी युगवाणी है, युगनिर्माता है, युगावतार है ; युगाधार है :

तुम बोल उठे युग बोल उठा, तुम मौन बने युग मौन बना ;
कुछ कर्म तुम्हारे कर संचित युगकर्म जगा, युग धर्म तना !
युग-परिवर्तक ! युग-संस्थापक ! युग-संचालक ! हे युगाधार !
युग-निर्माता युगमूर्त्ति तुम्हें युग-युग तक युग का नमस्कार ![2]

हिन्दी के चिन्तन-प्रधान कवि श्री सियारामशरण गुप्त ने तो एक अत्यन्त उदात्त भावपूर्ण, अर्थगम्भीर प्रशस्ति-काव्य ही निर्मित कर दिया है। 'बापू'

---

१ 'गुरुदेव गाँधी' : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

२ 'युगावतार गाँधी': सोहनलाल द्विवेदी

(काव्य) एक श्रद्धा-कलश है। उसमें बापू का एक विश्वविभूति, विराट्-पुरुष के रूप में भावन हुआ है—

छोटे से क्षितिज हे,
वसुधा के निज हे,

वसुधा तुम्हारे बीच स्वर्ग में समुन्नत है।

स्वर्ग वसुधा में समागत है,
आकर तुम्हारे नये संगम में,
लघु अवतीर्ण है महत्तम में !

प्रशस्ति-काव्यों में 'बापू'[1] का स्थान शिरस्थानीय है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने गाँधी में 'अवतार' की कल्पना की है;

सतयुग बीता, त्रेता बीता—यश-सुरभि राम की फैलाता;
द्वापर भी आया, गया—कृष्ण की [illegible] दरशाता।
कलियुग आया—जाते जाते उसके गाँधी का युग आया;
गाँधी की महिमा फैल गई, जग ने गाँधी का गुण गाया।[2]

हिंसा और बैर से प्रपीड़ित मर्त्य मानव को त्राण देने के लिए गाँधी का जीवन-सन्देश मुक्ति का दाता है, अतः कवि पंत जिज्ञासा-कातर हो उठे हैं।

बापू ! तुम पर हैं आज लगे जग के लोचन,
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बंधन ?[3]

जीवित व्यक्ति के प्रति इससे अधिक श्रद्धाप्लुत अंजलियाँ आज तक किसी भाषा में नहीं चढ़ाई गईं ! गाँधी के स्तवन में लिखी गई कविताओं

---

१ 'बापू' : सियारामशरण गुप्त
२ 'लोहे को पानी कर देता' : सुभद्रा कुमारी चौहान
३ 'बापू' : सुमित्रानंदन पंत

से एक महाग्रंथ का निर्माण किया जा सकता है—इसमें कोई अतिरंजन नहीं है। कवि रत्न पं० सत्यनारायण, मुंशी अजमेरी, हरिऔध, लोचनप्रसाद पांडेय, रामप्रसाद त्रिपाठी, उदयशंकर भट्ट, दुलारेलाल भार्गव, 'रत्नाकर', 'दिनकर', तोरणदेवी शुक्ल 'लली', तारा पांडेय, श्री केसरी, नेपाली, 'बच्चन', 'ज्योतिषी', 'अञ्चल', 'प्रभात', राजेश्वर गुरु, निरंकार देव 'सेवक', श्रीमन्नारायण अग्रवाल, रामनाथ गुप्त, रामदयाल पांडेय, 'रंग' रामेश्वर, विश्वम्भरनाथ, लक्ष्मीनारायण मिश्र, 'शुक्र', नरेन्द्र, मिलिंद, श्याम दीक्षित, कृष्ण चंद्र शर्म्मा आदि आदि कवियों की प्रशस्तियाँ तो श्री सोहन लाल द्विवेदी द्वारा सम्पादित 'गाँधी अभिनंदन ग्रंथ' में संकलित हैं, परंतु देश के कोने-कोने में जो गाँधी के अभिनंदन में कवियों ने गायन किया है, उसकी गणना किसने की है, कौन कर सकता है ?

गाँधी में किसी भी महापुरुष से अधिक अतिमानवीय गुण हैं और उनकी जीवन-कथा किसी भी धीर-वीर नायक से कम आकर्षक नहीं है ; अतः उनकी जीवन-कथा को भी हिन्दी कवियों ने कविता में अवतरित किया है। पिछले वर्षों में राजस्थान के कवि श्री मातादीन भगेरिया ने 'गाँधी-मानस' और बिहार के कवि ठाकुर प्रसाद सिंह अग्रदूत ने 'महामानव' नामक प्रबंध काव्य लिखकर गाँधी को उनका नायकत्व दिया है। प्रभाकर माचवे ने 'युग-आत्मा' नाम से गाँधी के जीवन और जीवन-दर्शन पर अच्छा काव्य लिखा है। श्री गोकुलचंद्र ने गाँधी की प्रशस्ति में एक काव्य 'गाँधी गौरव' बहुत पहले लिख दिया था। अभी-अभी दिल्ली के एक युवक नाटककार ने 'देव-दर्शन' नाम से अनेक एकांकी नाटक लिखे हैं जिन्हें गाँधीजी के जीवन के महत्त्वपूर्ण चित्रखण्डों की झाँकी कहा जा सकता है। गाँधी जी के जीवनीकारों में रोमाँ रोलाँ का नाम अग्रगण्य है, भारत-वर्ष में रामनाथ 'सुमन', जुगतराम दवे, घनश्याम दास बिड़ला ने गाँधी की जीवनियाँ लिखी हैं। घनश्याम दास जी का 'बापू' इस दिशा में एक अत्यंत सुन्दर प्रयत्न है।

इस प्रकार भारत-राष्ट्र के जन-जीवन के सामाजिक-राजनीतिक, नैतिक-धार्मिक और साहित्यिक-सांस्कृतिक अंगों को राष्ट्र-पिता गाँधी के वाणी-विचार और कार्य-कलाप ने नाम और रूप दिया है। आज का भारत-राष्ट्र का काल सच्चे अर्थों में **गाँधी-युग** कहा जाता है। गाँधी के इस महा-महनीय महत्त्व और महात्म्य के प्रति मैं निम्नलिखित श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ विराम लेता हूँ :

अन्यायों के गहन तिमिर में ज्योति-पुञ्ज तुम एक
सत्याग्रह के अग्नि-पंथ पर बढ़े अथक अनिवार
दिखा दिया तुमने स्वदेश को स्वतंत्रता का द्वार
आत्मा का रस ढाल किया मानवता का अभिषेक !
पीड़ित-पतित, दलित-शोषित की ओर बढ़ाकर हाथ
मिट्टी के मानव को पाकर मृण्मय सा मृत-प्राय !
प्राणामृत देकर कर सञ्जीवन का सफल उपाय
उसे बिठाया तुमने देवों के आसन पर साथ !

× × ×

शस्त्र और संहार व्याप्त है जहाँ घृणा-विद्वेष,
आमंत्रित करता अमृत जन अपना स्वयं विनाश !
उसको जीवन सत्य प्रेम के तुम अभिनव संदेश
अमृत का साधक-सा गाँधी-युग है एक प्रकाश !
मानव-संस्कृति के विकास में मार्ग तुम्हारा श्रेय,
युगाधार, युग युग तक होगा अजर, अमर अविजेय !

क्या गांधी युग खत्म हुआ ?

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल

क्या गाँधी युग खत्म हुआ ?

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल

आजकल अक्सर लोग कहते हैं कि अब गाँधी युग खत्म हुआ और नेहरू तथा सरदार का युग आ गया है। इस तरह की भावना का क्या कारण है ? एक कारण तो यह हो सकता है कि स्वराज्य मिलने पर पं० नेहरू और सरदार पटेल को सारा राजकाज चलाना पड़ता है। व्यावहारिक दृष्टि से वे सरकारी काम में महात्मा गाँधी की हर एक सलाह पूर्णरूप से स्वीकार करने में असमर्थ हैं। इसलिए जनता को ऐसा भान होना स्वाभाविक है कि अब गाँधी बाबा की पूछ नहीं होती। लेकिन जो लोग विचारशील हैं वे कभी इस तरह का सवाल नहीं कर सकते। बापू को न हिंदुस्तान का राजा बनना है न दुनिया का। वे तो जनता जनार्दन के अनन्य सेवक रहे हैं और रहेंगे और इसीलिए वे अवतार पुरुष माने जाते हैं। सत्य और अहिंसा के जिन सिद्धांतों का वे प्रचार करते हैं वे आज की परिस्थिति में भले व्यावहारिक न दीखें लेकिन उनके बिना संसार का कल्याण होना अशक्य है।

गाँधी युग के खत्म होने की भावना होने का दूसरा कारण यह हो सकता है कि आज तक तो अंगरेजी साम्राज्य के विरुद्ध हमारा संग्राम अहिंसक रहा और अब हिंसा का वातावरण चारों ओर फैला हुआ है। हिंदू-मुसलमान समस्या ने इतना भयंकर रूप धारण किया है कि गाँधी जी का अहिंसा का मार्ग लोगों को नहीं जँचता। इसके लिए मैं लोगों को दोष नहीं दे सकता। साथ ही यह भी मानने को तैयार नहीं हूँ कि हिंसा से कोई भी

समस्या स्थायी रूप से तय हो सकेगी। स्थायी शान्ति तो हिन्दुस्तान और दुनिया में प्रेम द्वारा ही स्थापित हो सकती है।

असली बात तो यह है कि गाँधी जी एक युग पुरुष हैं। उनका संदेश सदियों के लिए है। अमर है। महात्मा ईसा को यहूदियों ने फाँसी पर चढ़ा दिया क्योंकि उनका संदेश उस वक्त लोगों को कटु सत्य लगा लेकिन ईसाई धर्म ईसा की मृत्यु के बाद ही चारों ओर सारे जगत में फैला। यह महात्मा गाँधी का गौरव है, उनकी अपूर्व सफलता है कि उनका संदेश उनके जीवन काल ही में चारों ओर फैल चुका है लेकिन मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि उनकी अमर वाणी उनके निर्वाण के बाद सारे संसार पर छायेगी और लोगों को सदियों तक प्रेम और शान्ति का आशीर्वाद देती रहेगी। गाँधीयुग अभी खत्म कैसे हो सकता है वह तो शायद अभी ठीक तरह से शुरू भी नहीं हुआ है।

—:❀:—

गाँधी और प्लेटो

सुश्री राजेश्वरी

गाँधी और प्लेटो

सुश्री राजेश्वरी

मानव जाति के इस लम्बे इतिहास में कई ऐसे महान् व्यक्ति जन्म लेते हैं जिनके व्यक्तित्व का प्रभाव अपने देश और काल की सीमाओं को पार करके दूर-दूर तक पहुँचता है। प्लेटो और गाँधी की गिनती भी ऐसे ही महापुरुषों में की जा सकती है।

महात्मा गाँधी का व्यक्तित्व जितना ही महान, और उनका कार्य-क्षेत्र जितना ही विस्तृत है, उनके संबंध में कुछ लिखना उतना ही दुष्कर कार्य है। फिर, महात्मा गाँधी तो आज हमारे बीच में हैं। उनके जीवन का अपूर्व प्रयोग अभी गति-शील है। ऐसी दशा में उनके सम्बन्ध में इतिहास की निष्पक्ष दृष्टि से विचार करना किसी के लिए पूर्णतया संभव नहीं हो सकता। और, गाँधी जी जैसे एक महान व्यक्ति का प्लेटो जैसे दूसरे महान व्यक्ति के साथ तुलनात्मक अध्ययन कितना दुष्कर कार्य होगा, इसमें तो संदेह ही क्या है?

व्यक्ति अपने समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। उसके कार्यक्षेत्र को निश्चित करने में देश और काल का यथेष्ट हाथ रहता है। युग की ऐतिहासिक परिस्थितियों के प्रभाव से तो महापुरुष भी अछूते नहीं रह सकते। यद्यपि महापुरुषों की महानता अपनी परिस्थितियों को अपने आदर्श और सिद्धांतों के अनुकूल मोड़ने की क्षमता में ही है।

प्लेटो और गाँधी के सम्बन्ध में यदि हम कुछ जानना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि जिन ऐतिहासिक परिस्थितियों में उनका जन्म और

विकास हुआ और जिनके बीच में उन्होंने कार्य किया, पहले उनसे निकट परिचय प्राप्त करें। प्लेटो का जन्म ईसा से ४२७ वर्ष पूर्व यूनान में उस समय हुआ था जब कि वह अपनी सभ्यता की चरम सीमा से पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। यूनान में उस समय छोटे-छोटे राज्य थे जो 'नगर राज्य' कहलाते थे। प्लेटो का एथेन्स नगर भी इसी प्रकार का एक प्रजातंत्रवादी नगर राज्य था। उसके समय के एथेन्स के प्रजातंत्र राज्य में नाना प्रकार के दोष आ चुके थे। राजनैतिक शान्ति और सुव्यवस्था का वहाँ अभाव था। धनी और निर्धनों में वैमनस्य था। प्लेटो इस सारी स्थिति से असंतुष्ट था। उसी समय की एक घटना से प्लेटो को अत्यन्त क्षोभ पहुँचा। वह थी उसके गुरु सुकरात को मृत्युदण्ड। फलतः प्लेटो जिस समाज की सृष्टि था उसकी स्थिति से उसे गहरा असन्तोष हो उठा था और इसी लिए उसमें यथेष्ट सुधार करना उसके जीवन का प्रमुख लक्ष्य बन गया। प्लेटो की महात्मा गाँधी से तुलना करते समय इस बात में दोनों में हमें एक समानता मिलती है।

प्लेटो से २३ शताब्दी पश्चात महात्मा गाँधी का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध १८६९ में पोरबन्दर (काठियावाड़) में हुआ। भारतवर्ष में अंगरेजों की पराधीनता के कारण, जीवन के सभी क्षेत्रों में न केवल देश का विकास रुका हुआ था बल्कि वह वेग से पतन की ओर भी जा रहा था। आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों क्षेत्रों में गाँधी जी का देश अन्य स्वतन्त्र देशों की अपेक्षा कहीं अधिक पिछड़ा हुआ था। तो, महात्मा गाँधी के सामने भी प्लेटो के समान ही अपने देश की अवनत और दीन-हीन दशा थी पर गाँधी जी ने अपने जीवन के आदर्श का निश्चय भारत की वर्तमान स्थिति से प्रभावित होकर किया हो, यह बात नहीं है। उनके जीवन प्रेरणा का स्रोत तो भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता थी। अपने इसी आदर्श के अनुकूल उन्होंने देश की असन्तोष-जनक स्थिति का हल निकालने का प्रयत्न किया है। उनके जीवन को समझने की यही एक मात्र कुंजी है।

गाँधी और प्लेटो

गाँधी और प्लेटो के सम्बन्ध में पहला विचारणीय विषय है, उनकी जीवन सम्बन्धी दृष्टि जो उनके समस्त विचार धाराओं में ग्रथित है। प्लेटो की जीवन के सम्बन्ध में एक विशिष्ट दृष्टि थी। प्लेटो का अभिमत था कि मनुष्य जीवन का वास्तविक और चरम लक्ष्य अपने व्यक्तित्व अर्थात् अपनी आत्मा का विकास करना है। इस आत्मविकास की उसकी दृष्टि में एक ही प्रक्रिया थी—सच्चे ज्ञान की प्राप्ति। सच्चे ज्ञान से प्लेटो का तात्पर्य सांसारिक और दृष्टि-जगत की वस्तुओं के ज्ञान से नहीं, बल्कि उस अप्रत्यक्ष स्वरूप (फार्म) वाले ज्ञान से था जो कि उसकी दृष्टि से भौतिक जगत की वस्तुओं का एकमात्र आधार था। इस वास्तविक ज्ञान को दर्शन शास्त्र के अध्ययन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, ऐसी प्लेटो की धारणा थी। संसार के प्रत्येक भौतिक पदार्थ का वह एक ही ध्येय मानता था कि वह अपने स्वरूप के साथ अधिकाधिक सामंजस्य स्थापित करे। और किसी पदार्थ का जिस अंश तक अपने स्वरूप के साथ सामंजस्य होगा उसी अंश तक वह पदार्थ अच्छाई की ओर बढ़ता हुआ माना जायगा। इस प्रकार प्रत्येक वाह्य पदार्थ का लक्ष्य एक निर्दिष्ट अच्छाई की ओर बढ़ते रहना स्वीकार किया गया। और इन अनेकों अच्छाइयों के बीच में जो एक सर्वश्रेष्ठ अच्छाई है, इसी को ईश्वर का नाम भी दिया गया। मनुष्य का जीवन-लक्ष्य भी इस प्रकार की अच्छाई की प्राप्ति ही माना गया। स्पष्ट है कि प्लेटो का जीवन के प्रति एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण था और समाज में वह एक ऐसे नैतिक बंधन की, जिसे वह सर्वमान्य सत्य (युनीवर्सल ट्रूथ) मानता था, प्रतिष्ठा करना चाहता था।

और जब हम गाँधी जी की जीवन सम्बन्धी दृष्टि पर विचार करते हैं तब भी, जैसा कि हम ऊपर संकेत कर चुके हैं हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण भी भौतिक नहीं वरन् आध्यात्मिक है, और उनकी दृष्टि से जीवन का लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है। इस आध्यात्मिक आधार का कारण उनका ईश्वर में जीवित विश्वास है। उन्हीं के शब्दों में "वायु और जल के अभाव में मनुष्य जीवित रह सकता है परन्तु ईश्वर के बिना नहीं।"

गाँधी जी ने एक जगह ईश्वर सम्बन्धी व्याख्या इस प्रकार की है "मेरे लिए ईश्वर सत्य और प्रेम है; ईश्वर नीति शास्त्र और नैतिकता है; ईश्वर निर्भयता है; ईश्वर प्रकाश और जीवन का स्रोत और इस पर भी वह इन सब से ऊपर और परे है। ईश्वर अंतरात्मा है। वह नास्तिक का नास्तिकवाद है। वह वाणी और तर्क के परे है। उनके लिए जिनको उसके स्वरूपवान अस्तित्व की आवश्यकता है वह स्वरूपवान है। जिनको उसके स्पर्श की आवश्यकता है उनके लिए वह शरीरवान है। परिष्कृत तत्व है। जिनमें श्रद्धा है उनके लिए वह केवल 'है'।" ईश्वर की सबसे व्यापक, इसलिए सर्वश्रेष्ठ, व्याख्या गाँधीजी की दृष्टि से यह है कि "सत्य ही ईश्वर है।" और इसीलिए उनका विचार है कि उस चिर और अमर सत्य की खोज करना प्रत्येक मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिये और उसे स्वयं को सत्य का एक विनम्र अन्वेषक मानना चाहिये। इस सत्य के साक्षात्कार का ही दूसरा नाम मोक्ष-प्राप्ति है। इस मोक्ष-प्राप्ति का एक मात्र साधन 'अहिंसा' है। गाँधी जी प्राणिमात्र में ईश्वर की सत्ता को देखते हैं। जो व्यक्ति इस सत्य को पहचानता है उसका प्राणिमात्र में एकत्व और बंधुत्व का अनुभव करना स्वाभाविक है। और जो व्यक्ति प्राणिमात्र में इस प्रकार के अभेद और बंधुत्व का अनुभव करता है उसके लिए उस सत्य के साक्षात्कार का साधन अहिंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता। इन 'सत्य' और 'अहिंसा' के दो स्तम्भों पर ही महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन और समस्त विचार धारा का निर्माण हुआ है। और इसी लिये जीवन के प्रति गाँधी जी के दृष्टिकोण को भी प्लेटो की भाँति आध्यात्मिक दृष्टिकोण कहना होगा।

प्लेटो और गाँधी के दार्शनिक विचारों का उपर्युक्त विवेचन इस बात का प्रमाण है कि वे दोनों जीवन का उद्देश्य आत्मा की उन्नति और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति मानते हैं। अब हम इस दार्शनिक विचार धारा पर आधारित प्लेटो और गाँधी के समाज-संगठन संबंधी कल्पना पर विचार

करेंगे। जहाँ तक प्लेटो का सम्बंध है हम उसके उन्हीं विचारों का यहाँ उल्लेख करेंगे जो उसकी पुस्तक 'रिपब्लिक' (आदर्श राज्य) में उपलब्ध हैं।

प्लेटो ने अपने 'आदर्श राज्य' में जिस राज्य-व्यवस्था की कल्पना की है उसका लक्ष्य है समाज में अच्छे व्यक्ति उत्पन्न करना। प्लेटो की यह मान्यता थी कि एक अच्छे राज्य में ही अच्छे व्यक्ति का निर्माण हो सकता है। इस प्रकार के आदर्श राज्य में ही प्लेटो न्याय की स्थापना सम्भव मानता था, और अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' (आदर्श-राज्य) में जो विचार धारा उसने दी है उसका आधार प्लेटो की यही 'न्याय' की कल्पना है। प्लेटो ने अपनी 'न्याय' की परिभाषा इस प्रकार की है "Justice meant that man should do his work in the station of life to which he was called by his capacities." "प्रत्येक व्यक्ति का अपनी योग्यतानुसार समाज में प्राप्त दायित्व को पूर्णतया निभाने का ही अर्थ 'न्याय' है।" जिस प्रकार प्लेटो के आदर्श राज्य का आधार इस प्रकार की न्याय व्यवस्था थी, उसी प्रकार गाँधी जी अपने आदर्श समाज के सामने अहिंसा का उद्देश्य रखकर चलते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। गाँधी जी का यह अभिमत है कि सत्य का ज्ञान केवल अहिंसा द्वारा हो सकता है। और यह अहिंसा सिद्धान्त उनके जीवन के प्रत्येक अंग में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अतः स्वाभाविक है कि वह अपनी समाज रचना का निर्माण भी अहिंसा के आधार पर करना चाहें।

सैद्धान्तिक दृष्टि से यहाँ प्लेटो और गाँधी में एक मूलभूत अन्तर हमें मिलता है। प्लेटो अच्छे व्यक्तियों के निर्माण के लिए राज्य संस्था की सत्ता अनिवार्य मानता था। इसके विपरीत वास्तव में गाँधीजी एक दार्शनिक अराजकवादी (अनारकिस्ट) हैं। उनका यह मत है कि राज्य जैसी संस्था की अनिवार्यता मनुष्य की अपूर्णता के कारण ही है; यद्यपि एक

व्यवहारवादी के नाते वह यह भी मानते हैं कि मानव समाज में राज्य की यह अनिवार्यता बराबर बनी रहेगी। गाँधी जी के सिद्धान्ततः अराजक-वादी होने का मूल कारण यह है कि वह राज्य का आधार ही स्वभावतः हिंसा पर मानते हैं। राज्य के द्वारा किसी कार्य के किए जाने का एक ही अर्थ है और वह यह कि व्यक्ति के स्वतंत्र और नैतिक कार्यों का कोई मूल्य नहीं रहता। किसी भी व्यक्ति के कार्य नैतिक तभी हो सकते हैं जब वे स्वेच्छा से किए जायँ। कलों के समान कार्य करने का कोई नैतिक मूल्य नहीं है। राज्य का यंत्र कितना ही जनतंत्रीय क्यों न हो उसका आधार तो हिंसा ही है। "The state represents voilence in a concentrated forn —राज्य केन्द्रित और पुंजीभूत रूप में हिंसा को ही व्यक्त करता है।" इसलिए आदर्श रूप में गाँधी जी एक राज्य-विहीन जनतंत्र में विश्वास करते हैं, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं होगा। उस राज्य में मनुष्य सत्य के अन्वेषक होंगे, और उनका प्रयत्न जीवन में अहिंसा के उच्च स्तर से व्यवहार करना होगा। ऐसे संयमी बनने के लिए उन्हें अपनी इच्छाओं को कम से कम करना पड़ेगा। और अहिंसक होने के नाते वे उच्च विचार वाले होंगे। इसके विपरीत प्लेटो समाज में इसलिए राज्य की अनिवार्यता मानता था कि उसकी दृष्टि में राज्य व्यक्ति का श्रेष्ठतम व्यक्तीकरण है।

प्लेटो के अनुसार आदर्श राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों को सच्चे मार्ग पर अग्रसर करने की समुचित व्यवस्था करे। इसलिए उसने सच्ची शिक्षा और उचित सामाजिक जीवन की व्यवस्था राज्य के दो मुख्य कर्तव्य माने। प्लेटो ने अपने 'आदर्श राज्य' में जिस प्रकार की शिक्षा योजना का उल्लेख किया है वह क्रमिक और व्यवस्थित है। उसके विचार से शिक्षा का आदर्श एक ऐसे उपयुक्त वातावरण की सृष्टि है जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके विकास के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान कर सके। उसने अपनी योजना का सामाजिक पक्ष स्पार्टा की शिक्षा योजना से लिया और वैयक्तिक पक्ष एथेन्स की। उसकी शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षक का

कर्तव्य विद्यार्थी के सम्मुख उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करना मात्र था, जिससे प्रत्येक विद्यार्थी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार अपना विकास कर सके। अतः विभिन्न श्रेणियों के लिए दी जाने वाली शिक्षा में भिन्नता थी। संक्षेप में इस शिक्षा-योजना का उद्देश्य यही था कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी योग्यता और शिक्षा के अनुसार सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करे और इस प्रकार समाज में न्याय की स्थापना हो सके। प्लेटो की भाँति गाँधी जी भी अपनी अहिंसक समाज-रचना में शिक्षा का बहुत बड़ा महत्व मानते हैं। इसलिए उन्होंने एक नई शिक्षा-प्रणाली को भी जन्म दिया है, जो 'बुनियादी शिक्षा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस शिक्षा-प्रणाली का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूरा-पूरा विकास हो सके। यह तभी संभव हो सकता है जब शिक्षा का जीवन के साथ पूरा-पूरा सामंजस्य हो और समस्त शिक्षा का केन्द्र कोई न कोई शिल्प अथवा सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण हो। गाँधीजी की यह शिक्षा-योजना प्रारम्भिक शिक्षा की योजना है और वह समाज के सब वर्गों और श्रेणियों के लिए समान है। उन्होंने प्लेटो की तरह शिक्षा की अवस्थाओं में शासन की दृष्टि से कोई भेद नहीं किया है।

राज्य के कर्तव्यों में प्लेटो ने जिस दूसरी बात पर जोर दिया है वह है शासक वर्ग की उचित सामाजिक व्यवस्था। प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य में तीन श्रेणियों की कल्पना की है—दार्शनिक, योद्धा, और श्रमिक। वर्गीकरण का आधार उसका समाज के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार प्लेटो आत्मा के तीन मुख्य लक्षण मानता था—बुद्धि, साहस, और तृष्णा। यही प्लेटो का त्रिमुखी आत्मा का सिद्धान्त है। इसी के फल स्वरूप उसने आदर्श राज्य के विकास की तीनों अवस्थाएँ भी निश्चित की थीं। आर्थिक व्यवस्था सबसे निम्नकोटि की थी, सैनिक व्यवस्था मध्य कोटि की और दार्शनिक अवस्था सर्वोच्च थी। इसी के अनुरूप प्लेटो ने राज्य में तीन श्रेणियों की कल्पना की—दार्शनिक, योद्धा,

और श्रमिक। प्लेटो आत्मा के उपरोक्त तीनों गुणों को एक दूसरे से पृथक् मानता था और उनमें बुद्धि को श्रेष्ठतम गुण मानता था। यही कारण है कि उसने समाज को भी इन तीन पृथक् श्रेणियों में विभाजित किया और उनमें सर्वोच्च स्थान दार्शनिकों को दिया।

प्लेटो ने जिस प्रकार समाज की उक्त तीन श्रेणियों की कल्पना की है, उसी प्रकार गाँधी जी ने भी। वे भी समाज-व्यवस्था में वर्ण-सिद्धांत के समर्थक हैं। वर्ण-व्यवस्था का गाँधी जी की दृष्टि से एक बड़ा लाभ यह है कि उसके अंतर्गत प्रत्येक मनुष्य को अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य मिल जाता है, तथा समाज अनुचित प्रतिद्वंदिता से बच जाता है। गाँधी जी का भी, प्लेटो की तरह, यह मत है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज में निर्धारित अपने-अपने कर्तव्य को पूरा करना चाहिए।

गाँधी और प्लेटो में एक सीमा तक समानता होते हुए भी दोनों की श्रेणी-भेद की कल्पना में बड़ा अंतर है। प्लेटो का श्रेणी-भेद वास्तव में शासक और शासित का भेद है। उसका आधार सर्वथा राजनैतिक है। समाज की तीन श्रेणियों में पहली और दूसरी श्रेणी के लोगों की गिनती शासक वर्ग में और तीसरी श्रेणी की गिनती शासित वर्ग में की जा सकती है। गाँधी जी का वर्ण-सिद्धांत तो हमारा प्राचीन वर्ण-सिद्धांत है, जिसका आधार राजनैतिक नहीं है। वह तो समूचे समाज के कार्यों की कल्पना के आधार पर की गई समाज के संगठन की एक व्यापक योजना है। इसके अतिरिक्त वर्ण-सिद्धांत के अनुसार न तो किसी एक प्रकार के कार्य को नीचा समझा गया और न बुद्धि-जीवी वर्ग की श्रेष्ठता मानी गई है। महात्मा-गाँधी तो प्रत्येक के लिए यह अनिवार्य मानते हैं कि वह अपनी जीविका के लिए कुछ न कुछ शारीरिक श्रम करे। इसके विपरीत प्लेटो बुद्धि की श्रेष्ठता स्वीकार करता है। प्लेटो की श्रेणियों का निर्णय व्यक्ति की शिक्षा से होता है जब कि गाँधी जी जन्म से श्रेणी भेद का काफी सम्बन्ध मानते हैं।

प्लेटो और महात्मा गाँधी के विचार में हम एक और समानता पाते हैं। वे दोनों इस बात के समर्थक हैं कि जिनके हाथ में शासन सत्ता हो वे वास्तव में सेवाभावी और उच्च विचारों के व्यक्ति होने चाहिये कि शासन सत्ता का दुरुपयोग न हो सके। परंतु इस उद्देश्य-पूर्ति के लिए जो साधन प्लेटो और गाँधी ने सुझाए उनमें विषमता है। प्लेटो ने इसी दृष्टि से शासक वर्ग के लिए अपनी साम्यवादी व्यवस्था की योजना की थी। प्लेटो के साम्यवाद की इस कल्पना के पीछे एक और आधार था और वह यह कि प्लेटो राजनैतिक और आर्थिक कार्यों का एकीकरण व्यावहारिक दृष्टि से अनुचित मानता था। प्लेटो की इस साम्यवादी व्यवस्था का मूल उद्देश्य यही था कि शासक वर्ग के जीवन-चर्या की इस प्रकार से व्यवस्था हो कि वे व्यक्तिगत सम्बन्धों, स्वार्थों आदि से सर्वथा मुक्त रहें, न उनके लिए पारिवारिक बन्धन हों न साम्पतिक। उनका गृहस्थ जीवन सामूहिक होगा। उनके विवाह-सम्बन्ध अस्थायी होंगे। और वे उन सब जिम्मेदारियों से मुक्त होंगे जो एक गृहस्थ को उठानी होती हैं। गृहस्थ जीवन में जिस साम्यवाद की कल्पना प्लेटो ने की है वह एक प्रकार से व्यक्तिगत संपत्ति के क्षेत्र में पाये जाने वाले साम्य-वाद का परिणाम मात्र है। यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत और पारिवारिक सम्पत्ति के अभाव में परिवार के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। दूसरा कारण प्लेटो के सामने यह था कि वह पुरुष के साथ ही साथ स्त्रियों के लिए भी यह आवश्यक मानता था कि वे समाज के सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लें। इसी लिए वह यह नहीं चाहता था कि स्त्रियाँ घर के अन्दर ही गृहचर्या में अपना समस्त जीवन व्यतीत कर दें। वह इस पक्ष में था कि शासक वर्ग के सब लोगों का एक ही गृह-जीवन हो। इसी कारण वह इस निष्कर्ष पर भी पहुँचा कि शासक वर्ग की पत्नियाँ भी सामूहिक और बच्चे भी सामूहिक माने जाएँ। इस प्रकार की व्यवस्था से उसे कई लाभ दिखाई देते थे, जैसे भावी पीढ़ी का शारीरिक स्वस्थता की दृष्टि से राज्य द्वारा नियंत्रण संभव हो

सकेगा, क्योंकि जब सब लोग सब बच्चों को अपना ही समझेंगे तो उनमें पारस्परिक एकता का भाव रह सकेगा। संक्षेप में यही प्लेटो के साम्यवाद की रूप-रेखा है जो उसके 'आदर्श-राज्य' का आधार थी।

प्लेटो ने जिस साम्यवाद की कल्पना की है, उस पर विचार करने से हम एक महत्वपूर्ण परिणाम पर पहुँचते हैं और वह यह कि प्लेटो की व्यवस्था का आधार यह नहीं था कि वास्तव में शासन सूत्र जिन लोगों के हाथ में होगा वे ऐसे होंगे जो अपने स्वार्थ से ऊपर उठ चुके हों। प्लेटो तो उनके जीवन की इस प्रकार से व्यवस्था मात्र करना चाहता था जिससे उनके लिए व्यक्तिगत स्वार्थों और हितों जैसी कोई चीज ही न रहे। यह एक विचित्र सी बात थी, क्योंकि एक ओर तो दार्शनिकों के हाथ में शासन सत्ता देना उसने इसलिए उचित समझा था कि उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा और इसलिए उनके नियंत्रण में सारे समाज को भी वे इस ओर ले जाने की व्यवस्था कर सकेंगे, और दूसरी ओर प्लेटो उनसे यह आशा तक नहीं कर सका कि वे स्वभावतः अपने संकीर्ण स्वार्थों और हितों से ऊपर उठ सकेंगे। सच्चे ज्ञान के होते हुए संकीर्ण स्वार्थपरता का यह अस्तित्व कैसा? इसके विपरीत गाँधी जी की धारणा सर्वथा दूसरे प्रकार की है। राज्य सत्ता निःस्वार्थ और सेवा भावी लोगों के हाथ में हो, इसके लिए गाँधी जी की मान्यता यह है कि जो लोग राज्य सत्ता में भाग लेने वाले हों वे समाज के ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति होने चाहिये जिनमें कार्य करने की योग्यता हो, जिनका नैतिक धरातल ऊँचा हो और जो जन-सेवा और जनकल्याण की दृष्टि से ही राज्य-कार्य को चलाना चाहें। यह ठीक है कि महात्मा गाँधी भी समाज-व्यवस्था को ऐसा रूप देना चाहते हैं जिसमें स्वार्थपरता और सत्ता के दुरुपयोग के लिए कम से कम अवसर हो। यही उनकी विकेन्द्रित समाज-व्यवस्था की कल्पना है। परन्तु प्लेटो के साम्यवाद और गाँधी की विकेन्द्रित समाज-व्यवस्था में मौलिक दृष्टि-

भेद है। जहाँ प्लेटो के साम्यवाद का सम्बन्ध समाज के वर्ग विशेष से था, गाँधी की समाज व्यवस्था सारे समाज के लिए है।

प्लेटो और गाँधी के विचारों का जो विवेचन ऊपर हुआ है उसके आधार पर हमें इन दोनों महापुरुषों के विचारों में कुछ मौलिक अन्तर भी देखने को मिलते हैं। संक्षेप में उनके बारे में भी थोड़ा सा लिख देना उचित होगा।

सबसे पहली बात राज्य के स्वरूप की है। प्लेटो के आदर्श राज्य की कल्पना एक अनियमित (एब्सोल्यूट) राज्य की थी। इस राज्य में वर्ग विशेष की प्रधानता थी। यह वर्ग विशेष शासन-कार्य में अपनी इच्छा और अपने अनुभव के अतिरिक्त और किसी बात से प्रभावित हो, इसकी प्लेटो कोई आवश्यकता नहीं मानता था। ऐसे राज्य में, स्पष्ट है, कि कानून के लिये कोई भी स्थान नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में प्लेटो जनतंत्रीय राज्य के विरुद्ध था। इसका कारण उसकी विचार-धारा में स्पष्ट है। वह यह मानता था कि शासन-सूत्र उन्हीं लोगों के हाथ में होना चाहिये जिन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त हो क्योंकि वे ही लोग राज्य की इस प्रकार से व्यवस्था करने में सफल हो सकेंगे जिसके परिणाम स्वरूप उस राज्य के रहने वाले अच्छे व्यक्ति बन सकें। वह यह भी मानता था कि इस प्रकार का सच्चा ज्ञान एक दार्शनिक को ही हो सकता है। इसी से उसने राज्य सत्ता का भार दार्शनिकों को सौंपा। प्लेटो का यह विश्वास था कि साधारण जनता के लिये यह सम्भव नहीं है और न उनमें यह क्षमता है कि वे दर्शन के अध्ययन के द्वारा सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकें, और इसीलिए वे स्वयं अपने आचरण और व्यवहार के निर्णायक भी नहीं हो सकते। उनमें बुद्धि की प्रधानता नहीं होती, वे तो अपनी इच्छाओं और भावनाओं के वशीभूत होते हैं। इसीलिए उसने यह निष्कर्ष निकाला कि जहाँ राज्य का शासन-सूत्र दार्शनिकों के हाथ में होना आवश्यक है, वहाँ साधारण नागरिक का एकमात्र कर्तव्य उनकी आज्ञा पालन

करना है। प्लेटो ने इस बात के लिए भी कोई गुंजाइश छोड़ना आवश्यक नहीं समझा कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में भी साधारण जनता द्वारा राज्य का विरोध किया जाना उचित हो सकता है। इसके विपरीत जब हम महात्मा गाँधी के विचारों पर अपनी दृष्टि डालते हैं तो हम देखते हैं कि वे पूर्णतया जनतंत्रीय राज्य के पक्षपाती हैं। गाँधी जी के जनतंत्रीय प्रेम का आधार उनकी अहिंसा है। वे जनतंत्रीय राज्य में ही प्रत्येक मनुष्य के लिए उसका सम्पूर्ण विकास सम्भव मानते हैं। और यह तो वह चाहते ही हैं कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपना पूरा विकास करे और आत्मज्ञान तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो। प्लेटो की तरह वह नहीं मानते कि साधारण व्यक्ति में सच्चे ज्ञान को प्राप्त करने की क्षमता नहीं है। वह तो प्रत्येक व्यक्ति में इस क्षमता का होना स्वीकार करते हैं क्योंकि उनका यह विश्वास है कि ईश्वरीय तत्त्व प्राणी मात्र में निहित है, और प्रत्येक मनुष्य अपने में विद्यमान इस तत्व को पहचान सकता है। अतः गाँधी जी एक सच्चे जनतंत्र-वादी हैं, जबकि प्लेटो जनतंत्र-वाद का विरोधी। दोनों की राजनैतिक विचार-धारा में यह एक मौलिक भेद है।

इसी से इन दोनों विचारकों में पाया जाने वाला एक और भेद भी स्पष्ट हो जाता है। प्लेटो की राजनैतिक विचार-धारा में व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए स्थान नहीं है। उसने राज्य को व्यक्ति की अपेक्षा अत्याधिक महत्व दिया है। गाँधी जी, जैसा कि हम पहलें भी कह चुके हैं सिद्धान्तः अराजक-वादी हैं। समाज में वह यदि राज्य के स्थान को स्वीकार करते हैं तो इसी लिए कि वह मनुष्य से पूर्णता की इस सीमा तक पहुँचने की आशा नहीं रखते। फिर भी उनका प्रयत्न और उनकी इच्छा यही है कि समाज के जीवन में राज्य का कम महत्व हो। यहाँ पर एक बात का संकेत कर देना और आवश्यक है। प्लेटो ने राज्य और समाज के आवश्यक अन्तर को भी नहीं समझा था। गाँधी जी उस अन्तर को भली प्रकार समझते

हैं। जब वे राज्य के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह समाज के महत्व से भी इन्कार करते हैं। वास्तव में गाँधी जी की विचार-धारा में व्यक्ति और समाज में एक सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनके अहिंसक जनतंत्रीय समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज के प्रति उसके कर्तव्यों में समझौता करने का प्रयत्न है। व्यक्ति की उस स्वतंत्रता को वह त्याज्य समझते हैं जिसमें समाज के प्रति कर्तव्यों को कोई स्थान न हो। उन्होंने स्वयं कहा है : "मैं व्यक्ति की स्वतंत्रता की कीमत करता हूँ लेकिन यह बात नहीं भुलानी चाहिये कि व्यक्ति अनिवार्यतः एक सामाजिक प्राणी है।" फिर भी यह बात तो सही है कि महात्मा गाँधी समाज और व्यक्ति में व्यक्ति को पहला स्थान देते हैं। प्लेटो और महात्मा गाँधी के इस तुलनात्मक अध्ययन को समाप्त करने के पहले एक बात का उल्लेख कर देना और आवश्यक जान पड़ता है। और वह यही है कि जहाँ हम प्लेटो को एक आदर्शवादी कह सकने हैं वहाँ गाँधी जी को एक व्यावहारिक आदर्शवादी। गाँधीजी स्वयं भी अपने आपको एक व्यावहारिक आदर्शवादी कहते हैं। इसके लिए अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। एक दो का संकेत कर देना ही काफी होगा। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में जिस आदर्श राज्य की कल्पना की है उसी से यह स्पष्ट है कि उसने इस बात की चिन्ता बिलकुल नहीं की कि जिस राज्य का चित्र उसने खींचा है उसको व्यवहार में स्थापित करना भी संभव होगा अथवा नहीं। और यही कारण है कि बाद में जब उसका दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक हुआ तो उसने अपने विचार के आधारभूत सिद्धान्तों तक में परिवर्तन कर दिया जैसा कि उसकी अन्य पुस्तकों से विदित है। इसके विपरीत गाँधी जी के पचास वर्ष से भी अधिक लम्बे सार्वजनिक जीवन का अनुभव हमारे सामने है। हम जानते हैं कि उन्होंने अपने 'सत्य' और 'अहिंसा' के आधारभूत सिद्धान्तों में कभी भी परिवर्तन करने की कल्पना तक को

स्वीकार नहीं किया। और फिर भी वह इस बात का बराबर प्रयत्न भी करते हैं कि समाज उन सिद्धान्तों को अपने व्यवहार में ला सकें। इस दृष्टि से समाज के लिए जो आदर्श वह उपस्थित करते हैं उनको वह व्यावहारिक कसौटी पर कसने का बराबर प्रयत्न भी करते हैं। अस्तु, महात्मा गाँधी को हम एक गति-शील (डायनमिक) व्यक्ति मानते हैं जो समय और काल की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समाज को अपना कर्तव्य-मार्ग दिखाते रहते हैं। और यही कारण है कि जहाँ प्लेटो ने अपने समाज के जीवन को कोई नई दिशा दी हो, यह नहीं कहा जा सकता वहाँ महात्मा गाँधी ने न केवल भारतवर्ष को किन्तु समस्त मानव जाति के सामने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक नई दिशा प्रस्तुत की है। इसी में महात्मा गाँधी की वह विशिष्टता और महानता देखने को मिलती है जो कि हम प्लेटो में नहीं पाते। जहाँ प्लेटो एक विचारक मात्र था गाँधी में हम विचार और व्यवहार का एक सुन्दर समन्वय पाते हैं।

—:०:—

बिन्दु से सिन्धु

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

बिन्दु से सिन्धु

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

महात्मा जी मरने से पहले यदि बिन्दु थे तो मरने के बाद सिन्धु हो गये। मारने वाले ने तो जो कुछ सोचा हो परन्तु इससे अच्छी शानदार और प्रभावकारी मृत्यु क्या हो सकती थी? गाँधी जी अब व्यक्ति मिट कर समष्टि हो गये। नर से नारायण हो गये। उनका जीवन न केवल वैयक्तिक उन्नति या विकास की चरम सीमा ही बताया है बल्कि समष्टि-करण का भी उदाहरण पेश करता है। कोरे व्यक्तिगत गुणों को बढ़ाना अधूरी साधना है उन गुण व शक्तियों को समाज के हित में लगाना जीवन की सार्थकता है। गाँधी जी ने दोनों अर्थ में अपने जीवन को सार्थक बनाया। इस तरह उन्होंने जीवन का एक नया अर्थ हमारे सामने खोला और उसे चरितार्थ कर दिखाया।

गाँधी जी कोरे ख्याली आदमी नहीं थे। जो सोचा उसे कर दिखाया व फिर औरों से कह व करवाया था यही उनकी सफलता का आधार है। जो करवाया था वह दबाव से नहीं—पशु बल से नहीं—प्रेम बल से या आत्म बल से। यह उनकी सर्व-प्रियता का कारण हुई। पहले में सत्य की व दूसरे में अहिंसा की साधना थी।

उन्होंने कोई सिद्धान्त व आदर्श ही नहीं रखा, योजना व कार्यक्रम भी दिये। इसी से वे हमारे पथदर्शक हुए। वे चले गये पर उनके चरण चिह्न मौजूद हैं। हम उनकी चरण पादुका लेकर उनके काम को

सँभालें। इसमें भारत हमारा आदर्श हो। राम ने वापिस आकर भरत से राज-काज सँभाल लिया। गाँधी जी अब इस देह से लौट कर नहीं आवेंगे तो हम उनके 'राम-राज्य' को ही स्थापित करके उनके सच्चे अनुगामी व भक्त सिद्ध हों।

—:०:—

परिशिष्ट

वनस्थली विद्यापीठ समाज-शास्त्र-परिषद्

विधान

नाम—इस संस्था का नाम वनस्थली विद्यापीठ समाज-शास्त्र-परिषद् होगा,

उद्देश्य—परिषद् का उद्देश्य सामाजिक जीवन के अध्ययन, विवेचन और विकास सम्बन्धी समस्त सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान की अभिवृद्धि है और उस ज्ञान का सब स्वतंत्र, शान्तिपूर्ण, और प्रगतिशील समाज निर्माण के लिए उपयोग करना होगा ।

कार्यक्रम—परिषद् का निम्नलिखित कार्यक्रम होगा :

१—विचार विनिमय, वाद विवाद, लेखपाठ आदि का आयोजन,

२—समाज शास्त्र सम्बन्धी साहित्य के निर्माण और, प्रकाशन की व्यवस्था,

३—एक पत्रिका का प्रकाशन,

४—अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए अन्य समस्त समुचित उपायों का यथा-साध्य उपयोग जिनमें आधुनिक उपकरण भी समाविष्ट हैं,

संगठन—परिषद् का संगठन इस प्रकार होगा ;

वनस्थली विद्यापीठ समाज-शास्त्र-परिषद्

सदस्यता—

१—साधरण सदस्य : परिषद् के उद्देश्य से सहमत और उसके कार्य क्रम में क्रियात्मक सहयोग करने को प्रस्तुत प्रत्येक व्यक्ति परिषद् का साधरण सदस्य हो सकेगा,

२—सम्मानित सदस्य : जिन व्यक्तियों को परिषद् के उद्देश्य से सहानुभूति होते हुए भी उसके दैनिक कार्यक्रम में भाग लेना संभव नहीं होगा, परन्तु जिनका सहयोग और मार्ग-दर्शन परिषद् के लिए उपयोगी हो सकता है वे परिषद् के सम्मानित सदस्य हो सकेंगे,

३—जीवन सदस्य : जो व्यक्ति परिषद् के उद्देश्य से सहमत होंगे तथा उसके कार्यक्रम में क्रियात्मक रुचि रखते हुए उसमें यथासम्भव भाग लेने को तैयार होंगे और जिनका अपने जीवन कार्य को प्रथमतः सार्वजनिक वृत्ति से प्रेरित होकर ही चुनने का निश्चय होगा वे परिषद् के जीवन सदस्य हो सकेंगे,

विशेष—साधारण सदस्य का वनस्थली में रहना अनिवार्य होगा, सम्मानित तथा जीवन सदस्य का वनस्थली में रहना अनिवार्य नहीं है,

आ—सम्मानित सदस्य बनाने का अधिकार अध्यक्ष को और जीवन सदस्य बनाने का अधिकार जीवन सदस्यों के बहुमत को होगा,

पदाधिकारी—

१—संस्थापक सभापति : परिषद् के संस्थापक की हैसियत से श्री प्रेमनारायण माथुर परिषद् के संस्थापक सभापति होंगे,

२—अध्यक्ष : साधारण सदस्य और जीवन सदस्य मिल कर अपने ही में से किसी एक को परिषद् का अध्यक्ष चुनेंगे,

३—मंत्री : अध्यक्ष संस्थापित सभापति की सलाह और स्वीकृति से

साधरण अथवा जीवन सदस्यों में से किसी एक को परिषद् का मंत्री नियुक्त करेंगे,

४—उपमंत्री : अध्यक्ष संस्थापक सभापति की सलाह और स्वीकृति से साधारण सदस्यों में से किसी एक को परिषद् का उपमंत्री नियुक्त करेंगे,

पदाधिकारियों का कार्यकाल—

१—संस्थापक सभापति का कार्यकाल आजीवन होगा,

२—अन्य पदाधिकारियों का कार्यकाल केवल एक वर्ष का होगा, वर्ष अक्टूबर से सितम्बर तक का होगा,

पदाधिकारियों के कार्य और अधिकार—

१—संस्थापक सभापति के निम्नलिखित कार्य और अधिकार होंगे :

अ—परिषद् के कार्य की देख रेख करना,

आ—विशेष अवसरों पर परिषद् के तत्वावधानों में होने वाली सभाओं का सभापतित्व करना,

२—अध्यक्ष के निम्नलिखित कार्य और अधिकार होंगे :

अ—सामान्यतया परिषद् के तत्वावधान में होने वाली सभाओं का सभापतित्व करना,

आ—संस्थापक सभापति की सलाह और देख-रेख में परिषद् का कार्य संचालन करना,

३—मंत्री के निम्नलिखित कार्य और अधिकार होंगे :

अ—परिषद् का कार्यालय चलाना,

आ—परिषद् के कार्य की समुचित व्यवस्था करना,

ई—परिषद् के कोष की रक्षा करना, उसके आय-व्यय का हिसाब रखना, अध्यक्ष और संस्थापक सभापति से सालाना हिसाब स्वीकृति कराना और खर्च की अध्यक्ष से स्वीकृति लेना,

४—उपमंत्री के निम्नलिखित कार्य और अधिकार होंगे :

अ—मंत्री की सहायता करना,

आ—मंत्री की अनुपस्थिति में उनके कार्य को देखना,

विधान में परिवर्तन : जीवन सदस्य और साधारण सदस्य मिलकर अपनी उपस्थिति के दो तिहाई बहुमत से विधान में परिवर्तन करने का सुझाव रख सकेंगे जो संस्थापक सभापति की स्वीकृति प्राप्त हो जाने के बाद ही कार्यन्वित हो सकेंगे,

संस्थापक सभापति और साधारण तथा जीवन सदस्यों में मतभेद होने पर विधान सम्बन्धी मामलों में जीवन सदस्यों के बहुमत से अन्तिम निर्णय होगा,

संरक्षक—संस्थापक सभापति के परिषद् के उद्देश्य और कार्य क्रम में मतभेद होने के कारण अपने पद से त्यागपत्र दे देने पर अथवा संस्थापक सभापति की मृत्यु हो जाने पर, जीवन सदस्यों को अपने में से किसी एक को संरक्षक चुनने का अधिकार होगा, संरक्षक के वे सब अधिकार और कर्तव्य होंगे जो इस विधान के अनुसार संस्थापक सभापति के हैं,

Banasthali Vidyapith Social Studies Association

Speech delivered

BY

Prof. P. N. Mathur, the Founder-President on the occasion of the Foundation Day.

FRIENDS,

I owe a world (I wanted to write 'word') of explanation to address you in a foreign language on the one hand and on this particular day on the other.

Why I have preferred English to our own national language Hindi. The causa-proxima (the nearest cause) is perhaps my convenience. But this convenience of mine to be understood and appreciated has to be viewed in its proper historical context. Subordination to a foreign imperialism is at the root of this convenience (or should I really designate it as inconvenience in the garb of convenience), and as it is from the surroundings of this subordination and all that it means that this association takes its rise, there is not much wrong in its speaking the language of the same subordination also. If a justification or at least an explanation is needed, therefore, this is that I can offer. It is certainly open to you to accept it, reject it or condone it.

But we have assembled on a historic day for India, should I say the whole humanity ? Gandhi is certainly not a man of one nation or one people. His personality transcends all barriers of space and time. He is not only

an internationalist, that would be unfairly narrowing him down. If I may coin a new word for struggling through a correct expression (and words have no other service to perform), I would characterise Gandhi as a 'Brahmandist' —one who wants peace not only amongst all nations but all the varied organic and inorganic constituents of this vast universe. This is his nonviolence differently put. And if we find ourselves opposed to him in our individual or social actions, it is not because we do not praise his idealism and particularly the means he suggests to achieve it appear to us transcending human capacity today. They are so to say angelic rather than human. The distinction between end and means is dissolved and the latter is a culmination of the former. And of course he wants man to rise to the status of an angel—and our misfortune and hence our disagreement essentially lies in our incapacity to do so Hence Gandhi is a great personality and his life is an unbroken thread of service to humanity. And could there be a more fitting day for founding our Social Studies Association than the one we have today, on the birthday of Mahatma Gandhi ?

There is a third question also that I feel inclined to raise at this moment. I am anxious to pour myself out without reservation of any sort. What has activated and motivated that conception of Social Studies Association which I will just unfold to you ? Is it any unalloyed desire to serve others ? Or it is merely a manifestation of the Ego in a palatable, hence tolerable, hence commendable, and hence followable form ? It is essentially a question of psychology, as it appears on its face. And at least I am no student of psychology. But where lies the foundation of psychology ? Does it lie in psychology, in mind of man. I am inclined to answer how can it ? It, if not altogether, at least, to a highly significant extent, lies in the Thing also. But a further question (which is so beautifully called 'Shanka' in our language) arises. Are

'Foundation' and 'not altogether' consistent? Can Foundation, Cause, Reality, Ultimate, Eternal, Permanent, God, Ishvar, Atman, Soul, Spirit be more than one? It is Unity or Duality or Multi-ity that is the Final and the End? Teleological conception of this universe to be cent per cent teleological must speak in terms of unity. To the extent it pays homage to duality, it subtracts from the almightiness and all-powerfulness of the Almighty and the all powerful. Marx answer has also been in terms of unity. He only put Hegel's child of thought on its feet. I also am inclined to think that this vast universe is a process as what is dynamic cannot be anything else but a process. And all thinkers have agreed that world is dynamic. Now the origin of a process must be conceived in unity and so also its end, like the eternal river that begins in unity of its source ('Udgam') and ends in the unity of the great ocean (its Ant). It is only in the process that duality and trinity, and mutility arise. And as we human beings are in a process and are interested in a process, for us of limitations Reality is non-unity. Thus Reality is also relative for us of relativity and hence absolute values, conception, and ideals are not of any great use to us all. This is my fundamental disagreement to all absolutist philosophies, and therefore to the Gandhian philosophy as well. But why Gandhiji is a leader of action if his philosophy is non-adaptable to human conduct or behaviour? This is a great question. My answer is that in action he has always left room for relativity though in theory he has none. It is its flexibility that is the life-breath of Gandhi in action and it is its absoluteness that prevents Gandhi from reaching the culmination of success. Hence Gandhi becomes a dilemma—a dilemma in thought and a dilemma in action. I call him a dynamic man with a non-dynamic philosophy. And what of Marx the only other man of modern history who can stand a parallel. Marx realised the relativity of process, which is action, and emphasised it. He emphasises the unity of origih

which is not so relevant and non-unity of process which is very relevant and thus I call his method not scientific but realistic. Those disciples of his who have imputed his unity of origin to process or action also are his greatest enemies. They are the 'economic determinists' who are most ignorant of what economic interpretation of history means. I would called them 'mechanical objectivists' and such Marx was never, was never. It is on a proper reconciliation of subjectivism and objectivism that all human action in my opinion should be based. But I stop. I have been adrift. But it is not very inopportune on Gandhi's birthday. A few thoughts on Gandhi must be welcome.

Now I link up the link and repeat what has activated and motivated this Social Studies Association conception? A desire to serve others, or the Ego in me, in you, and in all who join and help it. I wish to put the controversy at rest by admitting that so far as I am concerned it is the both, you see, the same duality springs up as it must in all actions of us human beings. Our concern should end with the assurance that the duality is in a pose of what we students of economics describe equilibrium. That human behaviour and that human order is going to function in peace which secures such a equilibrium in the Ego and the non-Ego. Our Social Studies Association does it, is my assurance to you so far as I go and now it is your business to give me the assurance so far as you go.

Without waiting for such an assurance in words, I, however, proceed. I have preferred to call it Social Studies Association, and not 'Social Science Association'. Now there is a valid reason in my mind for the preference. Science is non-moral, that is neutral so far as human values are concerned. We do not want our Association to be such. We have a certain sense of valuation to guide us. Further, science means a certain inevitableness and dogmatism, not of man which is in religion, but of nature,

We want to keep us not confined to it. Though to an extent we will have to stick to it because all action is dogmatism in-carnate, all valuation is dogmatism in the mother's womb. And hence we cannot profess to be free from dogmatism altogether, but we do not wish to remain confined to it where it is not necessary. Hence the choice of our name

Its object would be to promote through all possible means and ways including publication and building up a good library, the study of subjects covered under the term Social Studies, particularly economics, Political Science, History, Sociology with a view to create intelligent citizenship that may be helpful in putting the existing world order from a condition of sickness in which it is at present to that of dynamic health. The Association will have its patrons, life-members and ordinary members. The life-members must fulfil a certain extra condition—that they do not seek for what is called social security in their actions and professions in a world where such a security is denied to the majority. To begin with, only I have decided to become such a life member. I will patiently look forward to the rising of the number but I will never be dissatisfied if it remains stationary at one. Membership of the Association would not mean living at Banasthali of course.

Such then is in its essence the picture of this Association which we have assembled to give birth today. I am quite confident that it would grow and flourish to its full strength getting its life source from the eternal process that this universe is.

In the end I once more request the co-operation of you friends in this noble venture, that has its future to unfold in a manner that must befit the fair name of this Vidyapith and us all who in this first sitting are associated in one

way or other with its. Let our watchwords be:

From ignorance to knowledge,
From darkness to Light,
From Vice to Virtue,
From sickness to health.

And it is with these words that I close: with knowledge within you spreading its light outside and promoting virtuous action, may you all be restored to a state of full and dynamic health.

BANASTHALI:
2nd October, 1945.